॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

३८

महाकविमुनिमेधाव्रताचार्यप्रणीतं

दयानन्ददिग्विजयं महाकाव्यम्

अधीतसाङ्गोपाङ्गवेदचतुष्टयेन

आचार्यश्रीमहावीरेण विरचितया

'विजयमंगला' संस्कृत-व्याख्यया समुपेतम्

हिन्दी-भाषानुवादेन च

१–३ सर्गपर्यन्तम्

प्राक्कथन

आचार्य बदरीनाथ शुक्ल

कुलपति, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता

वाराणसी दिल्ली

॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

३८

महाकविमुनिमेधाव्रताचार्यप्रणीतं

दयानन्ददिग्विजयं महाकाव्यम्

अधीतसाङ्गोपाङ्गवेदचतुष्टयेन

आचार्यश्रीमहावीरेण विरचितया

'विजयमंगला' संस्कृत-व्याख्यया समुपेतम्

हिन्दी-भाषानुवादेन च

१–३ सर्गपर्यन्तम्

प्राक्कथन

आचार्य बदरीनाथ शुक्ल

कुलपति, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ५२९३९ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७

प्रथम संस्करण १९७९

मूल्य रु० ८–००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्भा विश्वभारती

पो० बाक्स नं० १३९

चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)

वाराणसी

फोन : ६५४४४

GOKULDAS SANSKRIT SERIES
NO. 38

DAYĀNANDA-DIGVIJAYAM

OF

MAHĀKAVI MEDHĀVRAT ĀCĀRYA

with

'Vijayamaṇgalā' Sanskrit-Commentary
and Hindi Translation

1–3 Contos

by

Dr. MAHĀVĪR, M. A., Ph. D.
Shāstrī, Vyākaraṇācārya, Darśanācārya
Head, Department of Sanskrit
Maharshi Dayanand University, Rohtak (Haryana)

Introduction by

ACHARYA BADRINATH SHUKLA
Vice-Chancellor, Sampūrṇānand Sanskrit Vishvavidyālaya
Varanasi

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI DELHI

Publisher

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32

Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane

VARANASI-221001 (India)

Telephone : 52939 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar

DELHI-110007

First Edition 1979

Price : Rs. 8-00

Printers—Vidya Vilas Press, Varanasi.

येषां कृपालवेनाहं वाग्देवीं समराधिषं ।
तेभ्य एवोपहारोऽयं प्रीणन्तु गुरुदेवताः ॥

विषय-सूची

१. प्राक्कथन	...	...	९–१०
२. प्रस्तावना	...	...	११–१४
३. भूमिका	...	...	१५–४६
४. कवेर्वृत्तम्	...	...	४७–५२
५. प्रथमः सर्गः	...	...	१–३९
६. द्वितीयः सर्गः	...	...	४०–७६
७. तृतीयः सर्गः	...	...	७७–१०८

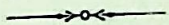

प्राक्कथन

महर्षि दयानन्द अपने अवतरण से भारतभूमि को अलंकृत करने वाले उन महर्षियों में से हैं, जिन्होंने भारतीय समाज को तत्समय विद्यमान रूढ़ियों और कुरीतियों से मुक्त कर कल्याणकारी समाज के रूप में विकसित होने के लिए मार्गदर्शन किया है। महर्षि दयानन्द ने अपने समय में समाज-शरीर में विद्यमान विभिन्न संकीर्ण विचारधाराओं, रूढ़ियों और परम्पराओं का निदान प्रस्तुत किया और समाज में व्याप्त भ्रान्तियों को दूर करने का प्रयास किया। समाज में जातीय उच्चावचता की भावना से मुक्त होकर, मानव को मानव से अलग करने वाली रेखाओं का उन्होंने विश्लेषण किया और एक दूसरे के प्रति एकता की भावना की अभिवृद्धि हेतु समाज का मार्गदर्शन किया। उन्होंने मूर्तिपूजा एवं मन्दिरों में प्रवेश एवं श्राद्ध आदि के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये उनके पीछे महर्षि का अभिप्राय यह था कि इन प्रश्नों को लेकर आर्य जाति में भेदभाव एवं अलगाव न उत्पन्न हो।

उनके समय में बहुत से हिन्दू परिस्थिति वश धर्म-परिवर्तन के शिकर हो रहे थे, वर्ण-व्यवस्था और सनातन धर्म की भावनायें हिन्दुओं के साथ उन लोगों की एकता में बाधक न हो, इसीलिए उन्होंने उनकी नये ढंग से व्याख्या की। वस्तुतः उन्होंने आर्यधर्म को अधिक उदार और व्यापक परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। महर्षि दयानन्द ने वेदों

और वैदिक धर्म के प्रचार और प्रतिष्ठा के लिए महान् कार्य किया। वेदों की व्याख्या करते हुए उन्होंने मानवता को ऊपर उठाने वाले उदात्त भावों को पूरे देश में घूम-घूम कर प्रचारित किया। आर्य धर्म के प्रचार, प्रसार और प्रतिष्ठापन में महर्षि दयानन्द के इस व्यापक अवदान को "दयानन्द-दिग्विजयं महाकाव्यम्" नामक ग्रन्थ में अभिनन्दनीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाकवि मुनिमेधाव्रताचार्य द्वारा प्रणीत यह महाकाव्य आर्य जाति के जन-जन के लिए उपादेय है। इसके सफल प्रकाशन की कामना करते हुए हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि जन-जन में इसका प्रचार हो और महर्षि दयानन्द द्वारा हिन्दू जाति के उपकारों का चिरकाल तक इसके माध्यम से स्मरण होता रहे।

अन्त में आचार्य महावीर जी को विशेष साधुवाद देते हैं जिन्होंने 'विजयमंगला' संस्कृत एवं हिन्दी रूपान्तर के द्वारा महर्षि दयानन्द जी के पुनीत विचारों को सर्वसुलभ बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। आशा है इस काव्य के अग्रिमांश भी यथा संभव शीघ्र प्रकाश में लाने का प्रयास किया जायेगा।

इस ऐतिहासिक क्रान्तिकारी महाकाव्य के प्रकाशन के लिए प्रकाशक को बधाई है।

बदरीनाथ शुक्ल
कुलपति
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय
वाराणसी

गंगादशहरा
दिनांक ५-६-७९

प्रस्तावना

सम्भवतः फरवरी १९६२ ई० की बात है। मैं काशी से मीमांसादर्शन पढ़कर गुरुकुल झज्जर लौटा था। 'दयानन्ददिग्विजयम्' महाकाव्य के यशस्वी लेखक महाकवि आचार्य मेधाव्रत जी गुरुकुल झज्जर आये। मैंने महाकवि आचार्य मेधाव्रत जी से छन्दःशास्त्र तथा अलङ्कार शास्त्र पहले ही सन् १९५५, ५६ में पढ़ा था। वे मेरे साहित्यशास्त्र के गुरु थे। मैं उनकी दृष्टि में एक मेधावी छात्र था, अतः मुझ से उनका स्वाभाविक स्नेह था। उन्होंने मुझे योग्य समझ कर आदेश दिया कि मैं उनके 'दयानन्ददिग्विजयम्' महाकाव्य की संस्कृत में टीका लिखूँ। टीका का स्तर उनके निर्देशानुसार मल्लीनाथ की 'सञ्जीवनी' टीका जैसा होना चाहिये। यह उनकी मेरे प्रति आशा का अतिशय था। मैंने उनके आदेश को शिरोधार्य किया।

जून १९६२ ई० में मैं विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर में विश्वविश्रुत विद्वान् तथा संस्थान के निर्देशक आचार्य विश्वबन्धु जी, तथा संस्थान के दर्शनार्थ होशियारपुर गया। वहाँ का कार्य देख कर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। श्रीयुत् आचार्य विश्वबन्धु जी से बात करते करते मैंने संस्थान में काम करने की अपनी इच्छा प्रकट की। आचार्य जी ने तुरन्त मुझे पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री-आचार्य कक्षा पढ़ाने के लिये संस्थान के प्राच्य-अध्यापन-विभाग में प्राध्यापक नियुक्त कर दिया। यहाँ मुझे काम के साथ साथ अपना स्वाध्याय करने तथा विशेषतः 'दयानन्ददिग्विजयम्' पर संस्कृत टीका लिखने का सर्वसाधन-सम्पन्न सु-अवसर मिल गया।

'दयानन्ददिग्विजयम्' के प्रारम्भिक सात सर्गों की टीका मैंने ३-४ मास में ही पूरी कर ली। और टीका को दिखाने के लिये महाकाव्य के लेखक के पास ले गया। वे उन दिनों कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली) में विराजमान थे। उन्होंने टीका की पाण्डुलिपि की प्रति अपने पास रख ली।

लगभग एक मास के बाद मैं फिर उनसे मिलने गया। उन्होंने तब तक सारी टीका पढ़ ली थी। वे अत्यधिक प्रसन्न दिखायी दिये। टीका की प्रशंसा करते हुए उन्होंने मुझे बधाई दी और इतनी सप्त-सर्गात्मक टीका पहले प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित करने का प्रबन्ध करने की वे योजना बनाने लगे। टीका उन्होंने अपने ही पास रहने देने के लिये मुझ से कहा। मैंने टीका उनके पास छोड़ दी। टीका का नाम स्वयं उन्होंने 'विजयमङ्गला' रखा जिसका अर्थ 'दयानन्ददिग्विजयम्' महाकाव्य की मङ्गलकारिणी है।

सन् १९६३ का मार्च आने तक उन्होंने टीका के प्रकाशन का प्रबन्ध करने की पूरी योजना तैयार कर ली। उनके पास ८-१० हजार रुपये थे, उनका उन्होंने न्यास (ट्रस्ट) बनाने का निश्चय किया। ट्रस्ट का यह कार्य उन्होंने तत्कालीन गुरुकुल झज्जर के उपाचार्य और हमारे सतीर्थ्य पं० वेदव्रत जी शास्त्री को सौंपा। उन्हीं को ८ हजार रुपये भी दे दिये। किन्तु दैवदुर्विपाक देखिये कि कुछ समय बाद महाकवि का निधन हो गया। ट्रस्ट के लिये या टीका के प्रकाशनार्थ दिया हुआ पैसा उनके कोई सम्बन्धी वापिस ले गये। फिर भी गुरुकुल झज्जर के अधिकारी इस टीका को प्रकाशित करने की योजना बनाते रहे। टीका की पाण्डुलिपि की प्रति कई वर्ष तक गुरुकुल झज्जर में तथा पं० वेदव्रत जी शास्त्री के पास प्रकाशन की प्रतीक्षा करती रही, किन्तु धनाभाव से यह सौभाग्य नहीं हो सका। उन का एक यह भी आग्रह रहा कि यदि महाकाव्य की पूरी टीका

(२७ सर्गात्मक) कर दी जाये तो प्रकाशन के प्रबन्ध की बात अधिक गम्भीरता से सोची जा सकती है। बड़ी इच्छा होते हुए भी मैं पूरी टीका समयाभाव से नहीं लिख सका और अन्ततोगत्वा मैंने टीका की पाण्डुलिपि उनसे वापिस ले ली।

कई वर्ष तक पाण्डुलिपि मेरे पास पड़ी रही। एक दिन अनायास ही इसकी चर्चा 'चौखम्भा ओरियन्टालिया' के मालिकों से कर बैठा। उन्होंने कहा 'लाइये हम इसको प्रकाशित कर दें'। मैंने स्वीकार कर लिया और परिणाम सामने है।

'विजयमङ्गला' संस्कृत टीका में हिन्दी अनुवाद और भूमिका आदि हिन्दी में लिखा हुआ अंश नहीं था यह सब अभी प्रकाशन के पूर्व या प्रकाशन काल में लिखा गया है। हिन्दी अनुवाद केवल तीन सर्गों तक ही दे पाया हूँ क्योंकि 'विजयमङ्गला' संस्कृत टीका का प्रकाशन ही हमारा मुख्य उद्देश्य है। टीका नीरक्षीर-विवेकी विद्वानों के सामने हैं, क्या गुण और क्या दोष हैं, वही बतला सकते हैं। हम यहाँ इतना अवश्य कहना चाहते हैं कि २०वीं शताब्दी में भी संस्कृत में उच्चकोटि की रचनायें हुई हैं जिनमें से 'दयानन्ददिग्विजयम्' एक है। वस्तुतः २०वीं शताब्दी के संस्कृत के महाकवियों में गिनने योग्य आचार्य मेधाव्रत जी ही हैं जिनका स्थान सर्वोपरि है। किन्तु खेद है कि अभी तक उनकी रचनाओं की ओर संस्कृत के विद्वानों का ध्यान नहीं गया है इसी लिये उनका साहित्यिक मूल्याङ्कन और उनका संस्कृत-साहित्य को योगदान तिरोहित है। प्रस्तुत टीका द्वारा उनके इस तिरोहित व्यक्तित्व को स्थालीपुलाकन्याय से सामने ला कर विद्वत्समाज का ध्यान इधर आकृष्ट करना है। यदि यह कार्य इस टीका द्वारा सम्पन्न हो सका तो मैं अपने प्रयास को कृतार्थ समझूंगा।

गुरुवर आचार्य मेधाव्रत जी अपने जीवनकाल में इस टीका को प्रकाशित रूप में नहीं देख पाये। इसके प्रकाशन की वेदना की कसक वे दिल में ले कर गये। यदि उनके जीवनकाल में यह प्रकाशित हो जाती या आज वे जीवित होते तो कितने प्रसन्न होते, यह कल्पना सहज की जा सकती है। किन्तु मैं अपने आपको अब भी धन्य समझता हूँ कि यह टीका प्रकाशित हुई और इससे उनकी दिवङ्गत आत्मा को कहीं न कहीं अवश्य शान्ति मिलेगी। यदि उनकी दिवङ्गत आत्मा ही इससे शान्त तथा सन्तुष्ट हो जाये तो मेरे लिये इससे अधिक सौभाग्य, सन्तोष तथा गुरुऋण चुकाने की क्या बात हो सकती है।

आचार्य बदरीनाथ शुक्ल जी के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने अपनी प्रशासकीय व्यस्तता से घिरे रहने पर भी प्राक्कथन लिखने की सराहनीय उदारता दिखलाई है। सचमुच में यह प्राक्कथन ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार के उद्देश्य को अभिव्यक्त करता है।

अब अन्त में मैं इसके प्रकाशक चौखम्भा ओरियन्टालिया के सत्वाधिकारी को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस टीका को प्रकाशित करके न केवल मेरे परिश्रम को सार्थक किया है अपितु इससे हमारे गुरुप्रवर आचार्य मेधाव्रत जी की दिवङ्गत आत्मा को भी शान्ति तथा सन्तोष प्रदान किया है।

प्रकाशन में अशुद्धियाँ रह गई हैं। संस्कृत का अशुद्धिपत्र पीछे संलग्न है। विद्वानों से तदर्थ क्षमायाचना है।

आचार्य महावीर

होलिका
मार्च ११, १९७९

भूमिका

महाकवि मेधाव्रत

महाकवि का संक्षिप्त जीवनवृत्त संस्कृत में आगे लिखा हुआ है। हम महाकवि और साहित्यकार के रूप में उनके विषय में यहाँ लिखेंगे।

महाकवि मेधाव्रत २०वीं शताब्दी के सबसे बड़े महाकवि हैं। किन्तु खेद है कि विद्वानों की दृष्टि अभी तक उनके इस कवि रूप पर पड़ी नहीं है। इस महाकवि के कवि रूप पर कुछ लिखने के पहले हम उनकी रचनाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डालेंगे।

उनकी रचनायें निम्न हैं :—

१—प्रकृतिसौन्दर्य

यह संक्षिप्त संस्कृतकाव्य मेधाव्रतजी की उस समय की रचना है जब वे आठवीं कक्षा में वृन्दावन गुरुकुल विश्वविद्यालय में पढ़ा करते थे। महान् दार्शनिक श्री भगवान्दास जी (काशी) ने इस लघु काव्य के विषय में लिखा है 'पद्य बहुत मधुर, बहुत सुन्दर थे'।

पण्डितराज जगन्नाथ की रचना गङ्गालहरी की अनुकृति पर महाकवि ने अपने प्रारम्भ काल में ही तीन काव्य संस्कृत में लिखे जो निम्न है।

१—दयानन्दलहरी।

२—दिव्यानन्दलहरी।

३—सुखानन्द लहरी।

भर्तृहरि के नीतिशतक आदि के आधार पर महाकवि ने अपने दो शतक काव्य संस्कृत में लिखे जो निम्न हैं :—

१—गुरुकुलशतकम्।

२—ब्रह्मचर्यशतकम्।

हिन्दी में १०३ पद्यों का संस्कृतच्छन्दों में 'गिरिराजगौरव' नामक खण्ड-काव्य भी आपने लिखा था। इसमें हिमालय के सौन्दर्य का आँखों देखा वर्णन

किया था। आचार्य महावीर प्रसाद जी ने इसको सरस रचना कहा था। इसी को बाद में आपने संस्कृत में 'गिरिराजगौरवम्' नाम से प्रकाशित करवाया।

'विरजानन्दचरितम्' और 'नारायणस्वामिचरितम्' दो और संस्कृत में चरितकाव्य आपने लिखे।

इनके अतिरिक्त ब्रह्मचर्यमहत्त्वम्' और 'ईशोपनिषत् काव्यम्' आपने अपनी अन्तिम अवस्था में संस्कृत में लघुकाव्य लिखे।

इस प्रकार कुल मिलाकर ११ खण्डकाव्य आपने संस्कृत में लिखे।

इन खण्डकाव्यों के अतिरिक्त पिङ्गलकृत 'छन्दःशास्त्रम् पर आपने व्रतिमङ्गला नामक संस्कृत-टीका लिखी और काव्यालङ्कारसूत्रों पर भी व्रतिमङ्गला नामक संस्कृत-वृत्ति लिखी। साहित्यसुधा नामक साहित्यविषयक संस्कृत पुस्तिका का १ भाग भी आप ने लिखा। उपर्युक्त पुस्तकें हरयाणा-साहित्य-संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक से प्रकाशित हो चुकी हैं।

कुमुदिनी चन्द्रः

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' गद्यमयी रचना ही कवि की वास्तविक परीक्षा है। इस परीक्षा में भी कवि खरे उतरे और 'कुमुदिनीचन्द्रः' नामक गद्यमय प्रबन्ध रचा। वस्तुतः कुमुदिनीचन्द्रः रचकर महाकवि मेधाव्रत ने संस्कृत-साहित्य में एक नयी विधा का सूत्रपात किया। 'कुमुदिनीचन्द्रः' संस्कृतसाहित्य में वर्णित गद्य की विधाओं में से किसी भी विधा में नहीं आता। 'कुमुदिनीचन्द्रः' समग्र संस्कृतसाहित्य में एक मात्र रचना है जो आधुनिक शब्दावली में उपन्यास कहा जा सकता है। यद्यपि अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजयम्' की रचना एक नयी विधा से की जो कुछ-कुछ उपन्यास के प्रकार की है किन्तु वह इतनी संवादात्मक है कि पूर्णरूप से आधुनिक उपन्यास की विधा में नहीं बैठती। किन्तु कुमुदिनीचन्द्रः पूर्णतः उपन्यास है। इसमें 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' के अनुसार ओजोगुण और समासबाहुल्य होते हुए भी इतना प्रसादमय है कि एक बार प्रारम्भ करने पर पाठक इतना रस अनुभव करता है कि समाप्त किये बिना नहीं छोड़ता। भाषा इतनी प्राञ्जल है कि भाव साथ-साथ हृदय में अङ्कित होते जाते हैं। महाकवि मेधाव्रत संस्कृत में बृहत्तममहाकाव्य के रचयिता ही नहीं अपितु संस्कृतसाहित्य में उपन्यास की नयी विधा के एकमात्र विधाता भी है।

दयानन्ददिग्विजयमहाकाव्यम्

दयानन्ददिग्विजयम् नामक आपकी कृति संस्कृत में महाकाव्य है। यह २७ सर्गों में है जो दो भागों में प्रकाशित हुआ है। पूर्वार्द्ध या प्रथम भाग १२ सर्गों में सन् १९३८ में 'आर्यकन्या महाविद्यालय, बड़ौदा' से पं० श्रुतबन्धु जी वेदतीर्थ द्वारा कृत हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ था। उत्तरार्द्ध या द्वितीय भाग सन् १९४७ में गुरुकुल सूपा से पं० सत्यव्रत जी द्वारा कृत हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ। वस्तुतः सम्पूर्ण महाकाव्य एक बार नहीं रचा गया, अपितु ९, १० वर्ष के काल के अन्तराल से दोनों भाग लिखे गये अतः उनके प्रकाशन के काल में भी व्यवधान है। इन दोनों की भूमिकायें बड़े विस्तार से महाकवि के जीवनकाल में ही लिखी गईं जिनमें महाकवि मेधाव्रत के विषय में तथा उनके महाकाव्य की रचना का इति वृत्त विस्तार से लिखा गया है।

सम्पूर्ण महाकाव्य में २७ सर्गों में २७०० पद्य या श्लोक हैं जो प्रति सर्ग निम्न प्रकार से हैं :—

सर्ग	श्लोक	सर्ग	श्लोक
प्रथम सर्ग	५१	पन्द्रहवाँ सर्ग	१२५
द्वितीय सर्ग	६०	सोलहवाँ सर्ग	११०
तृतीय सर्ग	८०	सतरहवाँ सर्ग	१०५
चतुर्थ सर्ग	८५	अठारहवाँ सर्ग	१००
पञ्चम सर्ग	९०	उन्नीसवाँ सर्ग	९५
छठा सर्ग	९५	बीसवाँ सर्ग	९४
सातवाँ सर्ग	१००	इक्कीसवाँ सर्ग	९०
आठवाँ सर्ग	१०५	बाईसवाँ सर्ग	८५
नवा सर्ग	११०	तेईसवाँ सर्ग	८३
दशवाँ सर्ग	१२५	चौबीसवाँ सर्ग	८३
ग्यारहवाँ सर्ग	१४९	पच्चीसवाँ सर्ग	८०
बारहवाँ सर्ग	१५०	छब्बीसवाँ सर्ग	७८
तेरहवाँ सर्ग	७०	सताईसवाँ सर्ग	१५०
चौदहवाँ सर्ग	१४९		कुल योग २७००

संस्कृत-वाङ्मय में पाँच महाकाव्य प्रसिद्ध हैं किन्तु दयानन्ददिग्विजयम् ऐसा महाकाव्य है जो कलेवर की दृष्टि से सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में (रामायण, महाभारत और पुराणों को छोड़कर) बृहत्तम हैं। अतः अब छ महाकाव्य कहे जाने चाहिये। बृहत्त्रयी के स्थान पर दयानन्ददिग्विजय को मिला कर बृहच्चतुष्टयी कही जानी चाहिये। इसमें २७ सर्गों में २७०० श्लोक हैं, संस्कृत-साहित्य में किसी भी महाकाव्य में श्लोकों की इतनी संख्या नहीं है।

'शङ्करदिग्विजयम्', के आधार पर ही 'दयानन्ददिग्विजयम्' मात्र यह नाम रखा गया है। शङ्कराचार्य ने जैसे अपने काव्य के सभी कर्मकाण्डी ब्राह्मण-मण्डनमिश्र आदि तथा बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर अद्वैतवाद की विजयपताका सर्वत्र फहरा दी उसी प्रकार ऋषि दयानन्द ने अपने समकालीन सभी धर्मावलम्बियों तथा पौराणिक पण्डितों को खुला शास्त्रार्थ का आह्वान देकर परास्त कर दिया और भारत की पराधीनता और सभी प्रकार से पतन के काल में वैदिक धर्म की ध्वजा चहूँ ओर फहरा दी। इसीलिये महाकाव्य के महनीय नायक ऋषि दयानन्द की दिग्विजय के कारण इसका नाम 'दयानन्ददिग्विजयम्' ठीक ही रखा।

साहित्यदर्पण आदि काव्य-शास्त्रों में प्रतिपादित

सर्गबन्धो महाकाव्यं तथैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
नाति स्वल्पानातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह॥

इत्यादि महाकाव्य के लक्षण इसमें पूर्णरूप से चरितार्थ होते हैं।

महाकाव्य का नायक इतिहास प्रसिद्ध, भारत की सर्वविध क्रान्तियों और सुधारों का मूल प्रेरणास्रोत, राष्ट्रोन्नायक महर्षि दयानन्द है। महाकाव्य में अन्य रसों के होते हुये भी शान्तरस प्रधान है। सर्गों की संख्या और कलेवर महाकाव्य के अनुरूप ही है। अतः यह संस्कृत साहित्य का बृहत्तम महाकाव्य है।

महाकाव्य की विषय-वस्तु महर्षि दयानन्द का जीवनवृत्त है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह अद्भुत कृति बन गई है। विविध विषय, अनेक भाव तथा विचित्र वर्णनों द्वारा यह कृति अनूठी लगती है। सर्वप्रथम हम अत्यन्त संक्षेप से प्रतिसर्ग वर्णित विषयवस्तु का निर्देश करते हैं जो स्वयं महाकवि ने प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर दे रखी है।

प्रथम सर्ग में भारत का प्राचीन गौरव अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में वर्णित है। दूसरे सर्ग में भारत को राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक सर्वविध दुर्दशाओं का चित्रण मर्मभेदी भाषा में रचा है। तीसरे सर्ग में मूलशङ्कर (स्वामी दयानन्द का पैतृक नाम) के जन्म स्थान, जन्म तथा बाल लीला का वर्णन भाव भीनी भावना में किया गया है। चौथे सर्ग में बालक मूलशङ्कर का शिवव्रत धारण करना तथा चूहे को शिवमूर्ति पर चढ़ा देख कर उसको सच्चे शिव की खोज का बोध होने का वर्णन किया गया है। पाँचवें सर्ग में मूलशङ्कर की बहन तथा चाचा की मृत्यु देखकर मृत्युञ्जय बनने और उसके लिये गृह त्याग का वर्णन है। छठे सर्ग में मूलशङ्कर का योगियों की खोज में घूमना और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेने का चित्रण है। सातवें सर्ग में सन्यास ग्रहण करने और दयानन्द सरस्वती नाम धारण करने तक की घटनाओं का उल्लेख है। आठवें सर्ग में स्वामी दयानन्द की हिमालय में योगियों की खोज करने की घटनाओं का प्रतिपादन है। नवमें सर्ग में स्वामी दयानन्द का नर्मदा के किनारे घूमते हुये तीन वर्ष व्यतीत करने की घटनाओं का वर्णन है। दशवें सर्ग में स्वामी दयानन्द की स्वामी विरजानन्द से आर्षविद्या ग्रहण करने और उनको दक्षिणा में अपने आपको समर्पित करके वैदिक प्रचार के लिये उनसे विदाई लेने का वर्णन है। ग्यारहवें सर्ग में स्वामी दयानन्द का मिथ्या देवी देवता की पूजा का खण्डन और एक ईश्वर की पूजा या भक्ति करने के उपदेश की घटनायें अङ्कित हैं। बारहवें सर्ग मे महर्षि दयानन्द का हरिद्वार में कुम्भ के मेले पर पधारना और पाखण्ड-खण्डनी पताका फहराकर अन्ध विश्वासों और भ्रान्तियों का खण्डन करने की घटना तथा वहीं पर कौपीन के अतिरिक्त अन्य वस्त्रों का परित्याग करने की प्रतिज्ञा का वर्णन है। तेरहवें सर्ग में स्वामी दयानन्द की 'वेदाध्ययन का अधिकार तथाकथित शूद्र और महिलाओं को भी है' इस घोषणा का सडिण्डिमघोष वर्णन है।

चौदहवाँ सर्ग में 'महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ तथा उपदेशों का ऐसा प्रभाव होता था कि मूर्तिपूजक मूर्तियों का गङ्गा में विसर्जन कर देते थे' यह वर्णित किया हैं। पन्द्रहवें सर्ग में महर्षि के ब्रह्मचर्य के बल और तेज की महिमा तथा उसके प्रभाव से दुर्जनों के अहङ्कार का चकनाचूर हो जाने का वर्णन है। सोलहवाँ सर्ग स्वामी जी की सचाई के बल से प्रतिपक्षियों के हृदय परिवर्तन का वर्णन करता है। सत्रहवाँ सर्ग महर्षि की वाग्मिता का वर्णन करता है जिसके कारण उद्दण्ड पण्डितों का मान मर्दन हो जाता था। अठारहवें सर्ग में काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का वर्णन है जिसमें स्वामी जी ने काशी के सब पण्डितों को परास्त कर दिया था। उन्नीसवें सर्ग में महर्षि की पूर्वी प्रदेशों की यात्रा, वहाँ के पण्डितों का शास्त्रार्थ में पराजय तथा वैदिक पाठशालाओं की स्थापना का उल्लेख है। बीसवें सर्ग में महर्षि की दिव्य प्रतिभा और उसके बल से पूर्व और उत्तर के दिग्गज पण्डितों पर विजय प्राप्ति का अद्भुत वर्णन है। इक्कीसवें सर्ग में स्वामी जी की महिमा से बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना का वर्णन है। बाइसवें सर्ग में स्वामी जी के वेदभाष्य प्रारम्भ करने का विशद वर्णन है। तेइसवें सर्ग में पंजाब की दिग्विजय तथा लाहौर में आर्य समाज की स्थापना का चामत्कारिक वर्णन है। चौबीसवें सर्ग में स्वामी जी की उत्तर भारत की दिग्विजय तथा सर्वत्र आर्य समाजों की स्थापना का लोमहर्षक वर्णन है। पच्चीसवें सर्ग में मेवाड के महाराणा का हृदय अपने अनुकूल बनाने तथा परोपकारिणी सभा की स्थापना का विचित्र चित्रण है। छब्बीसवें सर्ग में स्वामी जी का राजस्थान में महाराज जोधपुर को हितोपदेश करना तथा ब्राह्मण रसोइया द्वारा विषपान का विशादजनक वर्णन है, और सत्ताइसवें सर्ग में महर्षि का अपनी इच्छा से शरीर त्याग तथा मोक्ष प्राप्ति का दिव्य वर्णन है।

चरित्र-चित्रण की विलक्षणता :—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह महाकाव्य ऋषि दयानन्द की जीवन गाथा है। स्वामी दयानन्द का बचपन का नाम मूलशङ्कर था और जन्मभूमि सौराष्ट्र में मौर्यराज्य के अन्तर्गत टङ्कारा नगरी थी। टङ्कारा नगरी का वर्णन कितना स्वाभाविक है, इसके लिये निम्न एक श्लोक महाकाव्य से उद्धृत करते हैं :—

कुशपुष्पवतीहव्यद्रव्यौषधिसमिच्चया ।
रेजे यज्ञस्थलीवेयं गोविप्रगणमण्डिता ॥ ३।१९ ॥

ऋषि दयानन्द के जन्म से टङ्कारा नगरी पवित्र हो गई इसका वर्णन उपमाओं की झड़ी के साथ निम्न श्लोक में किया गया है :—

अयोध्या रामचन्द्रेण, मथुरा श्रीमुरारिणा ।
विश्ववन्द्या यथा पूता, टङ्कारा पूर्महर्षिणा ॥ ३।८ ॥

मूलशङ्कर के शैशवकाल का वर्णन कितने वात्सल्य भाव से किया है । निम्न दो श्लोक देखिये :—

दधिमन्थनकालेऽसौ नवनीताभिलाषुकः ।
तक्रबिन्दूक्षितास्येन्दु र्जनयामास कौतुकम् ॥ ३।६७ ॥
नानाभरणरत्नानि गणयन्निगडानिव ।
शरीरात् सारयामास शिशुर्योगीव निःस्पृहः ॥ ३।६८ ॥

शिवलिङ्ग पर चूहे चढ़े देखकर बालक मूलशङ्कर कैसे तर्क-वितर्क करता है । निम्न एक श्लोक देखिये, जिसमें यमक और अनुप्रास अलङ्कार वर्णनवैचित्र्य चित्रित कर रहे हैं :—

या दैत्यवृन्दद्विपदर्पनाशे
निरन्तरं सिंहसमानतेजाः ।
कथं स तुच्छाखुतिरस्कृताङ्गः
पराक्रमी नैव पराक्रमेत ॥ ४।५५ ॥

अपनी बहन और चाचा की मृत्यु देखकर बालक मूलशङ्कर की तार्किक बुद्धि का निदर्शन निम्न एक श्लोक में देखिये कैसे उपमाओं द्वारा शरीर की नश्वरता प्रतिपादित की है :—

किमिदं तनुभृत्कलेवरं
शरदम्भोधरखण्डचञ्चलम् ।
रुचिराम्बुदबद्बुदोपमं
परिणामेऽस्ति नितान्तभङ्गुरम् ॥ ५।४० ॥

बालक मूलशङ्कर का वैराग्य और उसके परिणाम स्वरूप गृह त्याग अश्वघोष के बुद्धचरित में वर्णित महात्मा बुद्ध के गृहत्याग के वर्णन को भी मात देता है, उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये :—

रजतकाञ्चनमौक्तिकमण्डितं, गृहिवरोत्तमभोगसुखोचितम् ।
ललितरूपललल्लनायुतं, भृशवशंवदकिङ्कर राजितम् ॥
स्वजननीप्रियताहृदयङ्गमं, रुचिरमन्दिरमिन्दुनिभाननः ।
अतुलयौवनशालिशमान्वितः, स विजहौ खलु बुद्ध इवात्मवान्॥६।१,२॥

गृहत्याग के पश्चात् मूलशङ्कर का शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी नाम धारण करके मृत्यु पर विजय प्राप्त करने और सच्चे शिव को प्राप्त करने के लिये 'योगियों और विद्वानों की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान, एक जङ्गल से दूसरे जङ्गल, एक दिशा से दूसरी दिशा, तथा एक मठ से दूसरे मठ तक भटकते रहने के सतत प्रयासों का ज्वलन्त वर्णन अत्यन्त रोमाञ्चकारी है, अद्भुत रस से भरपूर है। २४ वर्ष की नवयौवन अवस्था ही में स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम धारण करके सारे भारत भर के कोने-कोने और चप्पा चप्पा भूमि को छान डालना तथा कथित महन्तों, मठाधीशों धर्मध्वजियों, योगियों और संन्यासियों का पतित नग्न रूप देखकर ढोल की पोल का पर्दाफाश करने की तीव्र पतिक्रिया का विशद वर्णन हृदय को विह्वल और विलोडित कर देता है। निदर्शनार्थ एक श्लोक देखिये :—

स तु ददर्श पुरे बहुसंख्यकं, कमललोचनया समलंकृतम् ।
यतिविनिन्दितकर्मकलङ्कितं, तदविरागि विरागिकुलं व्रती ॥६।२३॥

ब्राह्मणों की पतित दुर्दशा के घिनोनेपन और तन्त्र आदि ग्रन्थों की परीक्षा के बाद मिथ्या होने से स्वामी दयानन्द उद्विग्न हो उठे। सच्चे गुरु से सच्ची विद्या पढ़ने की उत्कण्ठा तीव्र हो गई। अदम्य जिज्ञासा वश स्वामी दयानन्द ने सारे हिमालय पर्वत को छान मारा। अलखनन्दा नदी को पार करते समय नदी के बर्फीले पत्थरों पर गिर कर मरते-मरते बचने की घटना का वर्णन मर्मभेदी है। जङ्गलों में घूमते हुये शेर और भालुओं से आमना-सामना होना और उनका स्वामी दयानन्द के तेज के प्रभाव से चुपचाप खिसक जाने का वर्णन सचमुच अलौकिक है, विस्मय और अद्भुतता की पराकाष्ठा है।

अन्ततोगत्वा मथुरा में पहुँच कर आर्यविद्या के सागर स्वामी विरजानन्द के अन्तेवासी बन कर विद्याग्रहण करने का वर्णन गुरु-शिष्य का आदर्श प्रस्तुत कर देता है। ४० वर्ष की अवस्था वाले स्वामी दयानन्द पर एक दिन क्रुद्ध होकर गुरु विरजानन्द का उनको दण्डे से पीटना और बाद में स्वामी दयानन्द का गुरु विरजानन्द के हाथ यह कहकर दबाना कि गुरु जी ! मेरा शरीर तो वज्र की भान्ति कठोर है इस पर डण्डे मारने से आपके हाथों को कष्ट हुआ होगा, आज के उद्दण्ड छात्र वर्ग के लिये चामत्कारिक है। विद्या समाप्ति के बाद गुरु दक्षिणा के रूप में स्वामी दयानन्द का लौंग भेंट करना और गुरु विरजानन्द का उनसे सारा जीवन भेंट में माँगने पर जीवन समर्पित कर देने का वर्णन निम्न श्लोक में उत्प्रेक्षा द्वारा करना कालिदास के काव्य की कोटि से कम नहीं है :—

समर्पितं श्रीचरणे स्वजीवनं, नियोज्यमेनं विनियोजयेद् यथा।
वशंवदोऽयं प्रयतिष्यते तथा, विचारणीया न गुरो निदेशना ॥१०।१०१॥

देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी दृष्टियों से अत्यन्त दीन-हीन दशा देखकर हृदय झकझोर हो उठता है। समाधि में विलीन होकर अकेले ब्रह्मानन्द को भोगना उन्हें अच्छा नहीं लगता, करोड़ों व्यक्तियों को बन्धन की बेड़ी में जकड़ा देखकर अपने लिये मोक्ष प्राप्त करने की बात उनके मन को मथ डालती है। गोवधनिषेध के लिये कर्नल ब्रुक से स्वामीजी की बातचीत और युक्तियों का वर्णन बड़ा सजीव है। हरिद्वार में कुम्भ के मेले पर पहुँच करके सर्वस्व त्याग देते हैं, केवल एक कौपीन पहनने की प्रतिज्ञा करते हैं और धर्म के नाम पर आडम्बर और ढकोसला करके सर्वसाधारण का शोषण और गुमराह करने के विरुद्ध क्रान्ति करने के लिये पाखण्डखण्डनी पताका फहरा देते हैं। स्वामी दयानन्द जब एक निर्धन स्त्री को अपने मृत शिशु को गङ्गा में बहाकर उसके ऊपर लिपटे हुये वस्त्र को वापिस ले जाते हुये देखते हैं तो उन्हें देश के दरिद्र नारायण के दर्शन होते हैं, देश की दरिद्र दशा उन को व्याकुल कर देती है। उदाहरणार्थ देखिये निम्न श्लोक :—

दयामयो धारयितुं निजं मनो,
विलोक्य दृश्यं करुणं शशाक नो।
व्यचिन्तयत् खेदसमुद्रमग्नवान्,
दशां स्वदेशस्य दरिद्रताकुलाम् ॥१६।७१॥

एक मुसलमान के हाथों स्वामी जी के पानी पी लेने पर जब एक व्यक्ति ने यह कहा कि स्वामी जी मुसलमान के हाथ का पानी पी लेने से भ्रष्ट हो जाते हैं तब स्वामी जी ने कहा कि पानी तो कुएँ का है, किसी व्यक्ति का हाथ लगने से वह भ्रष्ट कैसे हो सकता है। चरित्र-चित्रण की मार्मिक विधा निम्न श्लोक में देखिये जब स्वामी दयानन्द को सचाई का प्रचार करने के लिये मारवाड़ में जाने से भक्त लोग यह कहकर रोकना चाहते हैं कि महाराज़! वह स्थान बड़ा खतरनाक है, वहाँ जाना ठीक नहीं। तब स्वामी जी उत्तर देते हैं :—

ममाङ्गुलीश्चेद् विरचय्य वर्तिकाः
कामं दहेयुर्मनुजास्तथाऽपि नो।
सत्योपदेशाद् विरमेयमित्यहो
प्रत्यूचिवान् आर्यजनाञ्जजनाग्रणीः ॥ २६।२७ ॥

इस प्रकार राष्ट्र के उत्थान के लिये चहूँ दिशाओं में भरसक कार्यक्रम का सजीव चित्रण करने के पश्चात् अन्तिम चित्रण स्वामी जी की मृत्यु शय्या का है। अपने ब्राह्मण रसोइया द्वारा विष दिये जाने पर ऋषि दयानन्द ने उसे रुपयों की थैली देकर भाग जाने को कहा और इस घटना की सूचना किसी को भी नहीं दी। इसका वर्णन बड़े मार्मिक शब्दों में है। ऋषि दयानन्द के शरीरत्याग के समय कहे हुये शब्दों का चित्रण निम्न श्लोक में है :—

इदमेव तवास्ति वाञ्छितं तव पूर्णं खलु तद् भवेद् विभो।
विहिता भवताऽप्यहो ध्रुवं शुभलीला शुभलील सत्प्रभो ॥२७।१०३॥

इस प्रकार ऋषि दयानन्द यह कहते हुये प्राण त्याग करते हैं। हे प्रभो! तूने अच्छी लीला की। तेरी इच्छा पूर्ण हो।

महाकाव्य का नायक धीरोदात्त है। धीरोदात्त के लक्षण साहित्यदर्पण में निम्न प्रकार हैं :—

अविकत्थनः क्षमावानति गम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥ ३।३२ ॥

स्वामी दयानन्द आत्मप्रशंसा को विषतुल्य समझते थे। अपने जहर देने वाले को भी रुपया देकर भगा देना क्षमा की चरमकोटि है जो ऋषि दयानन्द

में थी। गम्भीरता और महासत्त्वता तो उनके व्यक्तित्व में समाहित ही थे। स्थिरता और आत्म-सम्मान आदि गुणों के वे भण्डार थे। जो व्रत उन्होंने एक बार ले लिया, प्राणपण से उसे निभाया, इसके वे ज्वलन्त उदाहरण हैं ही। धीरोदात्त नायक के सब गुणों से वे भरपूर थे।

दयानन्ददिग्विजय अन्य संस्कृत काव्यों की भाँति दरबारी या किसी राजा आदि की प्रशस्ति में लिखा हुआ काव्य नहीं है। यह उस क्रान्तिकारी स्वामी दयानन्द का जीवन वृत्त है जिसने ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मणवाद पर कुठाराघात किया, धर्म के नाम पर किये जाने वाले आडम्बर और मिथ्या कल्पनाओं का पर्दाफाश करके रख दिया, देश की सामाजिक कुरीतियों के प्रति विरुद्ध तीव्र अवाज उठाई, राजनीतिक दासता के विरुद्ध खुला विद्रोह किया, मानव का मानव द्वारा शोषण के विरोध अपना मुक्ति सुख छोड़कर सारा जीवन लगा दिया। सदियों से चली आती हुई देश की एक-एक बीमारी का सही निदान किया, जो मृत्यु से भी कभी भी भयभीत नहीं हुये, जो राजे महाराजाओं की चाटुकारिता न करके उल्टी उनकी भर्त्सना करते थे, जिन्होंने महाराजा जोधपुर के महल में वेश्या को देखकर महाराज को धमकाते हुये कहा था, 'शेरों के हाँ कुत्तियों का निवास !' जिन्होंने उस समय के शासक अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की चिनगारियाँ भड़कायीं थीं। राष्ट्र के ऐसे महान् उद्धारक महापुरुष के जीवन वृत्त को संस्कृत काव्य के रूप में लिखकर राष्ट्र के प्रति भी महान् कार्य किया है और संस्कृत साहित्य की शाश्वत श्रीसमृद्धि की है। यदि चाहते तो कवि किसी भी राजा महाराजा या शासक अंग्रेजों की चाटुकारिता में महाकाव्य लिखकर व्यापक और सद्य ख्याति प्राप्तकर सकते थे। किन्तु क्या संस्कृत के महनीय विद्वान् इसी प्रकार के चाटुकार साहित्य का ही आदर करने के आदी हैं ? प्रश्न यह है कि ऐसे महान् नायक का बृहत्तम महाकाव्य होने के बावजूद भी 'दयानन्द दिग्विजयम्' को संस्कृत साहित्य में उचित स्थान क्यों नहीं मिला ? क्या संस्कृत के विद्वान् महाकाव्य के लेखक को एक सङ्कीर्ण दायरे में ही देखने वाली आँख रखते हैं। यदि यही कारण है तो न तो यह महाकवि के प्रति न्याय है और नही महाकाव्य के नायक महर्षि दयानन्द के प्रति। महर्षि दयानन्द मानवमात्र के थे और 'दयानन्ददिग्विजयम्' महाकाव्य प्रत्येक पाठक तथा साहित्यरसिक

के लिये है। किन्तु यह सही है कि या तो विद्वानों की दृष्टि ही इधर नहीं गयी है या फिर उन्होंने जानबूझ कर इसकी उपेक्षा की है। कारण चाहे कुछ भी हो। हम भवभूति के शब्दों को यहाँ उद्धृत करके समाप्त करते हैं :—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति तान् प्रति ते नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते तु मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

साहित्यिक समालोचना

कवि की शैली प्राञ्जल, ओज और प्रसाद गुणवाली है। समस्त रचना वैदर्भी रीति में लिखी है, हाँ, कहीं-कहीं घटना प्रसङ्ग में तदनुकूल विकट बन्ध और समास बाहुल्य के प्रयोग से गौडी रीति भी दृष्टिगोचर होती है। पाञ्चाली रीति का निदर्शन भी मिलता है। महाकवि वस्तुतः कालिदास से अत्यन्त प्रभावित हैं। महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक श्लोकों की रघुवंश के प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक श्लोकों से, भाव की दृष्टि से तथा आंशिक रूप से भाषा की दृष्टि से भी तुलना की जा सकती है। उदाहरणार्थ देखिये :—

दयानयानन्दनमूलशङ्करं सरस्वतीशं निगमेन्दुसागरम्।
विभुं निराकारमजं जगत्सृजं भजामि मेधार्जनतो महागुरुम्॥
(द. वि. वि. १, १)

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ (रघु. १, १)

महात्मनां ब्रह्मविदां तपोजुषां क सिन्धुगम्भीरचरित्रमुन्नतम्।
तरङ्गिणीसन्तरणैकहेतुका क चाल्पनौकेव मदीयशेमुषी॥
(द. दि वि. १, ४)

क सूर्यप्रभवो वंशः क चाल्पविषया मतिः। (रघु. १, २)

अयं प्रयासौ विबुधैर्विबुध्यतां जनस्य पङ्गोरिव शैललङ्घने।
(द. दि. वि. १,५)

प्रांशुलभ्ये फले लोभाद् उद्बाहुरिव वामनः। (रघु. १, ३)
अयं दयानन्दचरित्रसागरं तितीर्षतीयं कविकीर्तिकामुकः।

(द. वि. वि. १,३)

तितीर्षु दुस्तरं मोहाद् उडुपेनास्मि सागरम्। (रघु. १,२)
मन्दः कवियशः प्रार्थी। (रघु. १,३)

दयानन्ददिग्विजयमहाकाव्य में शब्द और अर्थ दोनों के ओज प्रसाद आदि गुण भरपूर रूप में विद्यमान हैं। दूसरे सर्ग में तो प्रत्येक श्लोक में ओजो-गुण की छटा छायी हुई है। इसके विपरीत तीसरा सर्ग समूचा ही प्रसाद गुण से सराबोर है। दोनों के उदाहरण निम्न श्लोकों में देखिये :—

हिमाद्रिविन्ध्याचललालिताभिर्नदीभिरामण्डितभूमिखण्डा।
स्वपूर्वजानन्तयशःशशाङ्कैः शुक्लीकृता भारतभूश्चकास्ति ॥ ३।१ ॥

चतुरद्वारयुताभित्तिः प्रस्तरै रचिता दृढा।
राजते दुर्गवद् यस्या रक्षिणी जननीव सा ॥ ३।६ ॥

आर्थिक समाधि गुण का निदर्शन निम्न श्लोक में देखिये :—

आनन्ददिव्यामृतवर्षिणी तां संसारतापावलि नाशनिष्णाम्।
योगेन्द्रसंसिद्धिमिवाद्रिखण्डे कादम्बिनीं कौतुकवाँल्लुलोके ॥२।३५॥

माधुर्य गुण का मधु तो महाकाव्य में स्थान स्थान पर टपकता है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये :—

तमोमये वर्त्मनि गच्छतो नुर्गुरूपदेशः क्षणमात्रदीप्तः।
यथा भवेदम्बुदकृष्णकाये विद्युत्प्रकाशोऽपि तथा दिदीपे ॥ २।३७ ॥

सौकुमार्य गुण की कोमलता का अनुभव निम्न श्लोक में कीजिये :—

इति वाचमुदीय योगधीरसुरोधं विधिरन्ध्रवर्त्मना।
प्रणवस्थानसङ्गतानसून् बहिरुत्क्राम्य ययौ परं पदम् ॥ २७।१०४॥

उदारता गुण का अवलोकन उदार भाव से निम्न वृत्त में कीजिये :—

सौन्दर्यगुणसम्पन्ना नारीव निरलंकृता।
वाणी सत्यवती कस्मै नारोचत मुनेः प्रिया ॥ १३ १८ ॥

अर्थव्यक्ति गुण की अभिव्यक्ति देखिये :—

छायासु गावः सलिले महिष्यः कुञ्जे मयूरा विपिने कुरङ्गाः ।
नीडे विहङ्गा कुसुमेषु भृङ्गाः निषेदुरुग्रांशुमयूखतप्ताः ॥ ८।२६ ॥

कान्ति गुण की उद्दीपक कान्ति निम्न श्लोक में कैसे पाठक को प्रदीप्त करती है:—

त्वां चूर्णयामि शठकर्णक ! तूर्णमेव
रे लम्बकर्ण ! तव शीर्णमवेहि शीर्षम् ।
दुर्वर्ण ! कर्णवसतेरपयाहि सद्यो
नो चेत्तवाद्य शरणं मरणं विना नो ॥ १५।१२२ ॥

इस प्रकार सर्वगुणसम्पन्न होने से महाकाव्य में वैदर्भी रीति है जिसका लक्षण काव्यालङ्कार सूत्र में निम्न है—

समग्रगुणा वैदर्भी ॥ २।११ ॥

यह महाकाव्य अलङ्कारों की झङ्कार से पद पद पर अलंकृत है। उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, श्लेष, सन्देह, विरोधालङ्कार, व्यतिरेक आदि सभी अलङ्कारों का प्रयोग महाकवि ने स्थान-स्थान पर किया है। स्थाली-पुलाकन्याय से कुछ उदाहरण देखिये :—

भुवनहितकरः प्रकाशितोऽयं रविरिव विश्वसृजा व्रती महर्षिः ॥ २।४६ ॥
सेविके इव शोभेते जनसेवाकृतव्रते ॥ ३।२ ॥

इन श्लोकों में उपमा कितनी अनुरूप लगती है। दूसरे सर्ग में टङ्कारा नगरी के वर्णन में उपमाओं का प्रयोग 'उपमाकालिदासस्य' की उक्ति को इस कवि पर चरितार्थ करती है।

वाक्यार्थोपमा का उदाहरण निम्न श्लोक में कितना अनुरूप है :—

हिमोत्तमाङ्गं स्थविराद्रिभर्त्तुर्बभौ महर्षेरिव शुक्लशीर्षम् ।
अनन्तकालादवहद्यतः श्रीज्ञानाम्बुगङ्गा विमलार्यलोके ॥ ८।७८ ॥

पूर्णोपमा का अनुपम निरूपण निम्न श्लोक में कीजिए :—

दयानन्दमुनेः कीर्तिश्चन्द्रिकेव मनोरमा ।
द्विजेन्द्रस्य जगद्व्योम्नि व्यानशे विमलाऽखिले ॥ १३।६ ॥

श्लेष की विशेषता निम्न श्लोक में अवलोकित करें :—

जडात्मचिन्नीरपयोविवेका मुक्ताशनाः शुक्लसुवर्णपक्षाः ।
त्यक्ताम्बराः संयमिराजहंसा रराजिरे यत्पुलिने गृणन्तः ॥ १७।३ ॥

वक्रोक्ति की व्यङ्ग्यात्मक अभिव्यक्ति का नमूना देखिए :—

निष्पक्षपण्डितस्येदं सत्योक्तं युगपन्नृणाम् ।
एकेषां हृदि पीयूषमन्येषां विषमाजनि ॥ १४।४२ ॥

उत्प्रेक्षालङ्कार निम्नश्लोक में देखिये, ब्रह्मचारी मूलशङ्कर को स्वामी शङ्कराचार्य उत्प्रेक्षित किया गया है :—

भूयोऽपि भूत्वा वटुरेष नूनं श्रीशङ्कराचार्य इहागतो नु ॥ ४।१५ ॥

वम्बई नगरी के वर्णन में कितनी अतिशयोक्ति भरी हुई है, निम्न श्लोक देखिये :—

गृहे गृहे चैत्ररथं पदे पदे मनोहरं नन्दनमत्र पुष्पकम् ।
सुवैजयन्ता धनदालयाः पथे पथे विरेजुः सुरयक्षभूभुजाम् ॥ २१।१४ ॥

शिवलिङ्ग के प्रति बाल मूलशङ्कर की सन्देहों की उद्भावना निःसन्देह सन्देहालङ्कार के नमूने बन जाते हैं, देखिये :—

किं सत्यरूपो भगवान् गिरीशो विश्वम्भरः शङ्कर एष साक्षात् ।
आहोस्विदेषा प्रतिमा तदीया संराजते नात्र विनिश्चयो मे ॥ ४।६३ ॥

विरोधाभास का उत्कर्ष देखिये :—

सावित्र्यां परमेष्ठीव श्रियां विष्णुरिवानिशम् ।
उमायां शम्भुवद्रक्तोऽप्यासीद् यो व्रतीनां वरः ॥ १३।२२ ॥

दयानन्द का दयानन्द से अनन्यसादृश्य होने से अनन्वय कितना बन पड़ा है, देखिये :—

श्रेयसे मानवानां यो मोक्षानन्दं जहौ मुदा ।
दयानन्द इवौदार्ये दयानन्दः स आबभौ ॥ १३।१० ॥

उपमेयोपमा का नमूना देखिये जहाँ धर्म उपमेय होकर भी ज्ञान की उपमा बन जाता है :—

धर्मोज्ञानमिवोत्कृष्टं ज्ञानं धर्म इवातुलम् ॥ १३।११ ॥

अर्थान्तरन्यास का विन्यास कितना स्वाभाविक है, देखिये :—

सत्याङ्कुरः क्व प्रलयं प्रयाति ॥ १७।५४ ॥

व्यतिरेकालङ्कार एक ही श्लोक में कितने प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है, देखिये—

यदन्तरं सिंहगजेन्द्रवृन्दयो यदन्तरं सूर्यमृगाङ्कबिम्बयोः ।
यदन्तरं वीन्द्रवीहङ्गसङ्घयोस्तदन्तरं योगिबुधेन्द्रवर्गयोः ॥ १८।५६ ॥

यमकालङ्कार की स्वाभाविक हृदयङ्गता देखिये :—

जनतया नतया ह्यभिनन्दितः ॥ ६।२० ॥
स नगरं नगरम्भवनं जगत् ॥ ६।३३ ॥
रसमयं समयं स निनाय तैः ॥ ६।४१ ॥
स सहसा सहसाधुभिरास्थितम् ॥ ६।४३ ॥

स्थान स्थान पर प्रसङ्गवश आये हुए वन, उपवन नदी, सागर, पर्वत, नगरी तथा ऋतु आदि का स्वाभाविक वर्णन सहज ही स्वाभावोक्तियों का निदर्शन बन जाता है।

सूक्तियाँ :—

महाकाव्य में छोटी-छोटी सूक्तियाँ इतनी गम्भीर भाव वाली हैं कि 'भावेरर्थ-गौरवम्' की उक्ति को महाकवि मेधाव्रत पर चरितार्थ करती हुई प्रतीत होती हैं। कुछ सूक्तियाँ नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं :—

सौभाग्यलभ्या हि सतां सुसेवा ॥
धन्यानां न फलन्ति कुत्र सुगिरो लोकोदयाकाङ्क्षिणाम् ॥
दर्पो मयाऽद्य विजितः फलिता सुविद्या ॥
सत्यप्रिया हि विबुधा विरला इहेति ॥
कल्याणकर्मणि सतां हि बिलम्बितं नो ॥
कल्याणिनी खलु सतां सततं प्रवृत्तिः ॥
सत्याग्रही किमु बिभेति नैजमृत्योः ॥
धैर्यं कुतः सत्यपथाच्च्युतानाम् ॥
सत्याङ्कुरः क्व प्रलयं प्रयाति ॥
क्रियात्मकं जीवनमेव मङ्गलम् ॥

न कस्य वन्द्यो मनुजस्य सज्जनः ॥
स्वसत्यधर्मान्न चलेत् तपोधनः ॥
सतां हि चेतांसि दयामृदूनि ॥
जनिनाशौ प्रकृतिर्हि वर्ष्मणः ॥

इस प्रकार की सूक्तियों से महाकाव्य-सागर भरा पड़ा है। महाकाव्य की पदलालित्य से पदावलि 'नैषधेपदलालित्यम्' वाली उक्ति यहाँ भी चरितार्थ होती है। यदि मैं अतिशयोक्ति नहीं करता तो 'माघे सन्ति त्रयोगुणाः' की उक्ति को महाकवि मेघाव्रत की भी विशेषता कहा जा सकता है। आधुनिक युग में २०वीं शताब्दी का यह महाकवि कनिष्ठिकाधिष्ठिताग्रगण्य संस्कृत-महाकवियों की श्रेणी में अपना स्थिर स्थान बना चुका है।

छन्दःशास्त्र पर कवि का असाधारण अधिकार है। सम्पूर्ण महाकाव्य में प्रायः सभी समवृत्त तथा विषमवृत्त, प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध-छन्दों का प्रयोग किया है। १२वां सर्ग सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में अपना अनुपम स्थान रखता है। इस सर्ग में १५० श्लोक हैं। सभी श्लोक भिन्न-भिन्न छन्दों और उसके भेदों के उदाहरण रूप हैं। स्वामी दयानन्द के चरित्र की शृङ्खला का क्रमशः वर्णन करते हुए प्रत्येक श्लोक में उसका नाम और प्रकार का नाम भी आ गया है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन वृत्तों का नाम और अर्थ भी जीवनवृत्त के साथ पूर्णतः सङ्गात रहता है। नमूने के लिये कुछ उदाहरण देखिये :—

'इन्द्रवज्रा'

यस्येन्द्रवज्रोपमगोचरेषु वश्येन्द्रियस्य क्षणभङ्गुरेषु ॥ १२।१॥

'उपेन्द्रवज्रा'

उपेन्द्रवज्रं गिरिदानवानां बलं यथा कुण्ठितवीर्यमास्ते ॥१२।२॥

'उपजाति'

भृङ्गा यथा यान्त्युपजातिमुग्धाः पुण्यभृतं पातुमयुर्विदग्धाः ।१२।३।

'उपजाति भेद, माला'

खारोहणादावनुयोगमालां तर्कांशुमाली कलयाम्बभूव ॥१२।६ ॥

'वंशस्थवृत्तम्'

अमृतं स्वधर्मं मनुजा विहाय ते स्वकीयवंशस्थनयाभिमानिनः।१२।१९।।

'द्रुतबिलम्बितम्'

द्रुतबिलम्बितनीतिचणो द्रुतं यतिविलोकनयत्नपरोऽभवत् ।१२।३५।

'रुचिरा'

व्रतीश्वरो व्रतरुचिराङ्गसौष्ठवः स्मिताननस्त्रिदशगिराऽऽलपन्मुदा ।१२।३७

'मन्द्राक्रान्ता'

मन्द्राक्रान्ता भरतवसुधा शोच्यतां हा गतेयम् ।। १२।४१ ।।

'पृथ्वी'

विकासिभिरकारि सोज्ज्वलतराऽऽर्यपृथ्वी भृशम् ।। १२।४२ ।।

'मालिनी'

मुदमतनुत विद्युन्मालिनीवाम्बुदाली ।। १२।४३ ।।

'शार्दूलविक्रीडितम्'

विद्रावे जयति प्रचण्डयतिराट् शार्दूलविक्रीडितम् ।। १२।४४ ।।

'रथोद्धता'

नन्दयत्यतिशयं हिताप्रिया मानसं तुदति गीरथोद्धता ।।१२।४९।।

'वृन्ता'

निपतितममलदृशोऽस्रु स्राक् सुममिव पवनहतं वृन्तात् ।१२।६०।

'भुजङ्गप्रयातम्'

भुजङ्गप्रयातोपमैर्दुश्चरित्रैस्त्यजेत्सङ्गतं सन्ततं दम्भिमित्रैः ।१२।७२।

'आर्या'

आर्यावर्त्ते विस्मयकारी विविधमतवादिसाधूनाम् ।। १२।८५ ।।

'भ्रमरविलसितम्'

स्त्रीपद्मिन्यां भ्रमविलसितम् ।। १२।१२१ ।।

महाकवि की इस अनूठी विशेषता का दर्शन करने के लिए सम्पूर्ण १२ वाँ सर्ग पढ़ना ही चाहिए ।

महाकाव्य में सर्वत्र वेद, उपनिषत्, पुराण, व्याकरण, ज्योतिष, तन्त्र, धर्मशास्त्र, कल्प, निरुक्त, शिक्षा, साहित्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, दर्शनशास्त्र, कोश, नीतिशास्त्र, इतिहास आदि अनेक विद्याओं की छटा बिखर रही है जो महाकवि मेधाव्रत की सभी विद्याओं में पारङ्गता की प्रत्यायक है।

'वाच्यातिशायिनि व्यङ्ग्ये ध्वनिस्तत् काव्यमुत्तमम्' इस उक्ति के अनुसार ध्वनि-काव्य ही सर्वश्रेष्ठ काव्य माना जाता है। कालिदास इसी विशेषता के कारण महाकवियों में शिरोमणि माने जाते हैं। हमारे महाकवि मेधाव्रत जी भी ध्वनि के प्रयोग में नहीं चूके। कवि ने अपने महाकाव्य की विशेषता ध्वनि द्वारा ही निम्न श्लोक में प्रकट कर दी है :—

नालङ्कृताऽपि सद्वाणी निर्दोषा सरला शुभा।
निसर्गसुन्दरी स्त्री वा रोचते खलु शर्मदा॥ १३।३॥

निसर्ग सुन्दरी दोष रहित, सरल और शुभलक्षण स्त्री जिस प्रकार बिना अलङ्कारों के भी सुन्दर लगती है इसी प्रकार कवि की वाणी चाहे अलङ्कारहीन भी हो तो भी यदि वह सत्, निर्दोष तथा शुभ है तो स्वाभाविक सौन्दर्य होने से वह भी सुन्दर लगती है। यही वाणी का स्वाभाविक सौन्दर्य है जो हमारे महाकवि की विशेषता है।

पूर्वार्द्ध की भाँति उत्तरार्द्ध (१२–२७ सर्ग) अधिक प्रौढ़ है और उसमें रसों का परिपाक अधिक सुन्दरता से हुआ है। स्वतः सिद्ध है कि वह कवि की बाद की रचना होने के कारण अधिक निखरी है, अधिक सरल है तथा अधिकपक्व है। पूर्वार्द्ध (१२ सर्गात्मक) में कहीं-कहीं पर पाण्डित्य प्रदर्शन की झलक लगती है। रसपरिपाक भी उतना प्रौढ़ नहीं है। खैर! यह कार्य हम नीरक्षीरविवेकी साहित्य-रसिक विद्वानों पर ही छोड़ते हैं, सम्पूर्ण महाकाव्य का अवलोकन करके मोती और सीप का विवेक वे स्वयं करें। सम्भव है हमारी दृष्टि अतिरञ्जित हो और कवि के अन्दर गुण अधिक देखे और दोष कम।

अब अन्त में हम आलोचना के प्रसङ्ग में उन अनेक विद्वानों की सम्मतियाँ, जो कवि की प्रशस्ति से भरभूर हैं, यहाँ अविकल रूप से उद्धृत करते हैं।

सम्मतयः

होशियारपुरीय विश्वेश्वरानन्दः वैदिकशोधसंस्थाना-ध्यक्षश्रीविश्वबन्धुशास्त्रिणाम्—

श्रीमेधाव्रतपण्डितमहाभागाः !

यच्छ्रीमद्भिः स्वोपज्ञं दयानन्दकाव्यं तत्तच्छन्दोऽलङ्कारगुणागारं मधुरं सुन्दरं विषयतो गहनं गभीरमपि सद्बोधतः सरलं सुगमं द्वादशभिरनतिदीर्घैः सुविभक्तैः सर्गैरुपनिबद्धं मां क्वचित् क्वचिच्छ्रावयित्वा मच्चेतसि प्रमोदलहरी समुत्पादिता तन्मन्ये महत उपकारस्य भाजनीकृतोऽस्मि। यथाऽस्यां कृतौ महोपकारको विद्यातपोवैभवेन जनतोद्धारकोनायकस्तथैवात्र विषयानुरूपः सहृदयचित्ताह्लादकरः शब्दविन्यासो वस्तुनिर्वाहश्चेति भूयो भूयः सफलीभूतपरिश्रमाणामद्यतनेऽपि सुरभारती परिशीलनेन तदुज्जीवकानां श्रीमतां वर्धापनं करोमि। आशासेऽनया कृत्याऽपराभिश्चैवं विधाभिः कृतिभिः श्रीमतां भारतीयसाहित्यसेविनां मध्ये चिरन्तनी यशःसमृद्धिः स्यादिति।

भावत्कः

दिनांक : २५-२-१९२८ कश्चिद् विश्वबन्धुसमाख्यः

ज्वालापुरीयमहाविद्यालयकुलपतीनां संन्यासिप्रवराणां शास्त्रि-
वेदतीर्थोपाधिधारिणां श्रीनरदेवमहोदयानाम्—

दयानन्ददिग्विजयविषयेऽस्माकं मतम्—

यान् काव्यदोषान् कवयो वदन्ति,
ते प्रायशो नात्र पदं लभन्ते ।
रसप्रकर्षोऽप्यत एव भाति,
पाठप्रमोदं च मनो दधाति ॥ १ ॥

प्रशंसनीयः स भवत्प्रयत्नः,
सानन्दसम्पादितकाव्यरत्नः ।
संदृश्यते यत्र मतेर्विकासः,
मुखस्य वादर्शतलेऽवभासः ॥ २ ॥

काव्यं सदा श्राव्यमिदं प्रयत्नै
रत्नैरिवाब्धिः परिपूर्णमस्ति ।
भावैर्लसद् द्वादशभिश्च सर्गैः
संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम् ॥ ३ ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती य-
च्चकार चित्रं भुवने चरित्रम् ।
तेनैव शोभातिशयं दधानं
विद्वन्मनोरञ्जकतां प्रयातु ॥ ४ ॥

विख्यातमेतद्भवतः कृतं स्ता-
न्मेधाव्रतस्यातितरां भवेस्मिन् ।
आशास्त इत्यादरभावितात्मा
ज्वालापुरीयो नरदेवाशास्त्री ॥ ५ ॥

कार्तिकशुक्ला द्वादशी, सं० १९९४ नरदेवशास्त्री

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयकुलपतीनां डा० मङ्गलदेवशास्त्रिणाम्—

"श्रीमत्पण्डितप्रवरमेधाव्रतकविरत्नप्रणीतं श्रीमद्दयानन्ददिग्विजयं नाम द्वादशसर्गात्मकं महाकाव्यं निरीक्ष्य नितरां प्रसन्नमस्मदीयं चेतः। देववाण्याः कृते सर्वथा प्रतीकूलेऽप्यस्मिन् काले ललितयाऽर्थगभीरया च शैल्या एतादृशमहाकाव्यनिर्माणेन सुरभारत्या भूयोऽपि भुवि भव्य-सौभाग्यं वर्द्धयताऽस्य कर्त्रा तस्या महदुपकृतमिति सादरं तस्मै शतशो धन्यवादान् वितरामः। कलिकल्मषापहारिणो यतिवरस्य व्रतीनां मूर्द्ध-न्यस्य चिराय समुच्छिन्नवैदिकवाङ्मयस्य भूयोऽपि भारतभूमौ समु-द्धारकस्य जगत्पूज्यस्य श्रीमतः स्वामिश्रीदयानन्दाचार्यस्य पुण्यातिपुण्यं जीवनचरितमुद्दिश्य प्रवृत्तं महाकाव्यम् एतच्चिराय विवेकचणानां विदुषां सहृदयानां हृदयपरितोषाय भूयादिति चासकृत्कामयामहे ॥"

दिनांक : ९-२-१९३८ मलङ्गदेवशास्त्री

मनीषिप्रवराणां दार्शनिकशिरोमणीनां मुक्तिराम उपाध्याय इत्यभिहितिचराणाम् आर्यजगत्प्रसिद्धानां स्वामिनाम् आत्मानन्दमहोदयानाम्

श्रीमन्नाचार्यवर ! सप्रेम नमस्ते !

भवत्काव्यं निरीक्ष्य महान् प्रसादोमेऽभूत्। एतद्विषये यत् किञ्चिद् विवक्षुस्तदधस्तात् पद्यत्रयेण निबध्नामि। गुरुकुलीयपाठ्यप्रणाल्यां स्थानमिदं लभतामिति मेऽभिलाषः। यदि भवान् प्रयत्यैकद्वौ सर्गावलङ्काराणां क्रमिकोदाहरणै निबन्द्धुं शक्नुयात्तर्हि भृशं लाभकरं स्यात्।

कविवर ! कृतिरतिरुचिरा,
रुचिलानं सुचिरं चकार भवतः।
शमनरसपरा सुतरा-
माहरतितमां मनः कवेर्भणितिः ॥ १ ॥

यदन्तिमेऽपि जीवने
प्रसादमाततान तत्।
प्रसन्नवर्णमालया
सुवर्णितं कवेर्हितम् ॥ २ ॥

मेधामलंकृतिमुज्ज्वलपद्यवृन्दे,
आचार्यतामपि चमत्कृतकल्पनासु।
सद्वृत्तवर्णनमथ व्रतमङ्कयन् भोः !
सत्काव्यपंक्तिषु लिलेख निजाभिधानम् ॥ ३ ॥

भवतः शुभचिन्तकः
मुक्तिराम उपाध्यायः

गुर्जरप्रान्तीयाणन्दगुरुकुलमहाविद्यालयस्याचार्यणां श्रीमयाशङ्करमहोदयानाम्—

अद्य मया श्रीपण्डितमेधाव्रतकविरत्नेन प्रणीतस्य दयानन्ददिग्विजयनामकस्य महाकाव्यस्य हस्तलिखितं पूर्वार्द्धं दृष्टम्। श्रीमेधाव्रतकविरत्नस्य वाक्प्रवाहः संस्कृतभाषायामस्खलितगतिर्वर्त्तते। अद्यत्वे संस्कृतभाषायां महाकाव्यनिर्माणं सरस्वतीप्रसादमन्तरा सुदुर्लभमिति न विदुषां धियामगोचरः। प्राक्तनसंस्कारोद्बोधमन्तरेण कवित्वं न सुलभम्। श्रीमेधाव्रतकविरत्नेन महाकाव्यनिर्माणे नूनं साफल्यमलम्भि—इति वचने न काप्यतिशयोक्तिर्जागर्त्ति। महाकाव्येस्मिन् प्रसन्नपदैरर्थगौरवनिर्भरैर्न क्वापि स्फुटता अपाकृता। माधुरीधाराऽपि काप्यनुत्तमा श्रुतौ पतन्ती श्रोतॄन् सुखोदन्वति निमज्जयति। इदानीं गीर्वाणगिरीदृशमहाकाव्यनिर्माणमार्याणां परममभिमानस्थानं वर्त्तत इत्यहं जाने। अस्य महाकाव्यस्य पठनेन पिपठिषूणां समीचीना व्युत्पत्तिर्भविष्यति अतोऽवश्यमिदं मुद्रापणीयम्। अतो धनिकजनैरस्य महाकाव्यस्य मुद्रापणे निजधनस्य सूपयोगः कर्त्तव्यः। कविवरश्चायं साहाय्यदानेन प्रोत्साहनीयः यतोद्भुतमुत्तरार्द्धमप्यस्य महाकाव्यस्य विदुषां दृष्टिपथं यायात्।"

दिनांक : १३-९-१९३६ श्रीमयाशङ्करः

वडोदामहाविद्यालये संस्कृताध्यापकानाम् एम. ए. उपाधि-धारिणां श्रीगोविन्दलालहरगोविन्दभट्टानाम्—

"अनेकगद्यपद्यात्मकसंस्कृतग्रन्थप्रणयनप्रथितयशसां यथार्थनाम्नां कविरत्नादिपदविभूषितानां पण्डितमेधाव्रतशर्मणां दयानन्ददिग्विजयाख्या महाकाव्यरूपा कृतिः साद्यन्तं मयावलोकिता समजनि च महानानन्द-सन्दोहः। अधीतवेदवेदाङ्गानां पतितपावनपुण्यश्लोकभीष्मपितामह इत्यादि पदवीशोभितानां श्रीमद्दयान्दमहर्षीणां दिव्यचरितं ग्रन्थेऽस्मिन् वस्तु-त्वेन स्वीकृतम्। शैली च खलु ग्रन्थकृतां विषयमाहात्म्यानुरूपा। दृश्यन्ते च पदे पदे प्रसादादिगुणा रूपकोपमाद्यलङ्काराः शान्तवीरप्रभृति-रसाः प्रकृतिसौन्दर्यवर्णनं शब्दार्थगौरवं गीर्वाणभाषाप्रावीण्यं च। वर्तन्ते च गीर्वाणभाषायां श्रीमच्छङ्कराचार्यदिग्विजयादिप्रबन्धाः किन्तु तत्संख्याल्पीयसी। एतादृशग्रन्थविरचनेन ग्रन्थकृद्भिर्गीर्वाणभाषाया महती सेवा कृतेत्यत्र न कोऽपि शङ्कालेषः। एतद्ग्रन्थवाचनेनैवं प्रतीतिर्जाता पण्डितमेधाव्रताः कालिदासभवभूतिप्रभृतिमहाकविनामवतारभूता वर्त्त-मानकाले विराजन्त इति। उत्तरार्द्धोऽस्य ग्रन्थस्याचिरेणैव कालेन सम्पूर्णो भवत्वित्याशास्य विरम्यते।"

दिनांक : १—२—१९३८ श्रीहरगोविन्दभट्टः

पञ्चनदीयपण्डितप्रवराणां न्यायवेदान्ततीर्थानां श्रीविद्याधरशर्मणाम्—

विद्वन् !

दृष्ट्वा भवन्महाकाव्यं परं तोषमुपागमम् ।
तल्लिखामि सहर्षं यन् ममास्ते हार्दिकं मतम् ॥ १ ॥

दर्शं दर्शं पुनरपि पुनश्चक्षुषो नोपरामः,
ध्यातं ध्यातं भृशमपि भृशं चेतसो नैव दाहः ।
पाठं पाठं पठितमपि यत् काव्यलालित्यपूर्णं,
काव्यं मेधाव्रतकविकृतं भूतले सन्तनोतु ॥ २ ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीनाम्-
ऋषीश्वरैश्वर्ययुतां यतीनाम् ।
विद्वत्त्वचारित्र्यविशेषतां श्री-
मेधाव्रताचार्यकृतिर्दधाति ॥ ३ ॥

भो भो काव्यरसामृतप्रवहणस्यालोचने तत्परा
साहित्यस्य विशारदाः सुरसिकाः श्रीशारदोपासकाः ।
अत्रागत्य विलोक्यतां मधुकरा युष्मादृशानां कृते
काव्यं रस्यसमाप्लुतं सुरुचिरं संस्थापितं वर्तते ॥ ४ ॥

कालिदासमहोदयः कविकुलश्रेष्ठो न दृष्टो मया
श्रीमाघो भवभूतिभारविसमाश्चान्येऽपि भासादयः ।
कुर्वाणाः स्वीकृतीर्विमोहितमती र्यातादिवं ते चिरा-
दस्माकं तु युगे विराजति कविर्मेधाव्रतः साम्प्रतम् ॥ ५ ॥

श्रीमेधाव्रतपण्डितस्य विदुषः श्रद्धास्पदा लेखनी
चारित्र्यस्य विचित्रचित्रनकलाचातुर्यमातन्वती ।
अस्मिन् रम्यतरे सुचारुरचिते काव्ये दरीदृश्यतां
विद्वद्भिर्मन आनिधाय नितरां ग्रन्थश्च पापठ्यताम् ॥ ६ ॥

दिनांक : १४-२-१९३८ विद्याधरः शर्मा

वटोदरस्थे राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालये प्रधानाध्यापकानां पण्डितप्रवराणां श्रीलक्ष्मीनाथशास्त्रिणाम्—

कविरत्नपण्डितमेधाव्रतविरचितं श्रीदयानन्ददिग्विजयाख्यं द्वादशसर्गात्मकं काव्यं मया सादरं सप्रमोदं चावलोकितम्। कविकर्मकुशलेन प्रतिभाशालिनाऽमुना कविरत्नेन ते ते विषया अस्मिन् काव्ये पसन्नया श्रुतिमधुरया सरलया च गिरा तथा वर्णिता यथा गृहीतमात्रमेवेदं काव्यं पाठकगणस्य हृदयङ्गमं भवति। अथ चात्र काव्ये निपुणेन कविना विविधानि वृत्तानि शब्दसौष्ठवं वर्णमाधुर्यं शब्दालङ्कारा अर्थालङ्काराश्च साहित्यशास्त्ररसिकानाम् आस्वादनाय निबद्धा येन काव्यमिदं स्थलविशेषे कालिदासभवभूतिप्रभृतिमहाकवीनां कृतिं स्मारयति। काव्यस्यास्यात्तरार्द्धमिमे कविवराः शीघ्रं सम्पादयन्तु। लोकाश्च तद्रसास्वादनेन प्रमुदितमनसो भवेयुरित्याशास्ते।

बदरीनाथात्मजो
लक्ष्मीनाथः शास्त्री

दिनांक : २८-४-१९३८

काङ्गड़ी गुरुकुलविश्वविद्यालयकुलपतीनां प्रख्यात-विदुषाम् विद्यावाचस्पतिमहोदयानाम्—

"पण्डितमेधाव्रताचार्यरचितस्य 'दयानन्दग्विजयकाव्यस्य काँश्चिद् भागानद्राक्षम्। 'नात्र कविः क्वचिदपि सत्यं साहित्यकृतेऽहासीद् न च साहित्यं सत्यकृते समुपैक्षिष्ट' इति विभाव्य परं हर्षपदमपीपदम्। उभे अपि स्वमर्यादया निर्वाहयितुं यतितम्। नेदं सुकरं सर्वैर्जनैः। प्रायेण कवयः साहित्यगतरुढिपरिपालनायालङ्कारलुब्धतया वा तथ्यराद्धान्तं जहति। ऋषिदयानन्दचरित एवं चेष्टेत कविश्चेत् किमतोऽनर्थतरं स्यात्। सत्यं साहित्यं च सजुरतिवाहयितुं सफलः खलु प्रयत्न आचार्यमेधाव्रतस्य। नैतस्य सिद्धालेखनी क्वचिदपि विश्वस्तं स्वान्तमतिसमधात्। प्रकाशिते सतीदं काव्यं विद्वत्सु समादरभाजनं भविष्यतीत्याशासे ॥"

दिनांक : ४–२–१९३८ विद्यावाचस्पतिः

उपरिलिखितप्रशस्तिपूर्ण सम्मति १२ सर्ग तक पूर्वार्द्ध के रूप में लिखे गये महाकाव्य पर दी गई थीं। सम्पूर्ण महाकाव्य के लिखे जाने पर जो और विद्वानों ने महाकाव्य के गुणों का बखान करने वाली सम्मतियाँ प्रकट कीं वे निम्न हैं।

रा. रा. श्री काशीनाथ रघुनाथ वैशम्पायन 'काव्यतीर्थ' की शुभसम्मति निम्न है—

महाकाव्यं महाकाव्यमिति गीर्वाणवाङ्मये ।
घोषितं छात्रसन्दोहैः पठितं सादरं मुदा ॥ १ ॥
महाकाव्यप्रणेतारो दृष्टा केनाऽपि नो स्वयम् ।
नापि तेषां प्रतीच्छायाः सहवासः कुतो ननु ? ॥ २ ॥
कवीनां सहवासेन रसराजो विवर्द्धते ।
काव्यमर्मापि विज्ञातुं सुलभत्वं प्रजायते ॥ ३ ॥
यदहो ! कालिदासाद्या नाद्य प्राणन्ति भारते ।
महाकाव्यप्रणेतृत्वमशक्यं मन्वते जनाः ॥ ४ ॥
परं श्री येवलेग्रामे जनस्थानान्तिके शुभे ।
श्रीमन्मेधाव्रताचार्या रचनाकुशलास्सदा ॥ ५ ॥
प्रणीतं तैर्महाकाव्यं काव्यलक्षणभूषितम् ।
नायको धर्मवीरश्च श्रीदयानन्दयोगिराट् ॥ ६ ॥
सङ्कुलं सदलङ्कारै र्निर्मलं सृष्टिवर्णनैः ।
सद्विचारैस्तीव्रभावैर्महाकाव्यं सुगुम्फितम् ॥ ७ ॥
आर्यव्रतो दयानन्दः कविर्मेधाव्रतो महान् ।
प्रह्वीकृतो भारतोऽयं सदाऽन्योऽन्यप्रभावतः ॥ ८ ॥

दिनांक : १६–१०–१९४६ काशीनाथ रघुनाथ

काङ्गड़ी गुरुकुलविश्वविद्यालयकुलपतीनां प्रख्यात-विदुषाम् विद्यावाचस्पतिमहोदयानाम्—

"पण्डितमेधाव्रताचार्यरचितस्य 'दयानन्दग्विजयकाव्यस्य काँश्चिद् भागानद्राक्षम्। 'नात्र कविः क्वचिदपि सत्यं साहित्यकृतेऽहासीद् न च साहित्यं सत्यकृते समुपैक्षिष्ट' इति विभाव्य परं हर्षपदमपीपदम्। उभे अपि स्वमर्यादया निर्वाहयितुं यतितम्। नेदं सुकरं सर्वैर्जनैः। प्रायेण कवयः साहित्यगतरुढिपरिपालनायालङ्कारलुब्धतया वा तथ्यराद्धान्तं जहति। ऋषिदयानन्दचरित एवं चेष्टेत कविश्चेत् किमतोऽनर्थतरं स्यात्। सत्यं साहित्यं च सजुरतिवाहयितुं सफलः खलु प्रयत्न आचार्यमेधाव्रतस्य। नैतस्य सिद्धालेखनी क्वचिदपि विश्वस्तं स्वान्तमतिसमधात्। प्रकाशिते सतीदं काव्यं विद्वत्सु समादरभाजनं भविष्यतीत्याशासे॥"

दिनांक : ४–२–१९३८ विद्यावाचस्पतिः

उपरिलिखितप्रशस्तिपूर्ण सम्मति १२ सर्ग तक पूर्वार्द्ध के रूप में लिखे गये महाकाव्य पर दी गई थीं। सम्पूर्ण महाकाव्य के लिखे जाने पर जो और विद्वानों ने महाकाव्य के गुणों का बखान करने वाली सम्मतियाँ प्रकट कीं वे निम्न हैं।

रा. रा. श्री काशीनाथ रघुनाथ वैशम्पायन 'काव्यतीर्थ' की शुभसम्मति निम्न है—

महाकाव्यं महाकाव्यमिति गीर्वाणवाङ्मये ।
घोषितं छात्रसन्दोहैः पठितं सादरं मुदा ॥ १ ॥
महाकाव्यप्रणेतारो दृष्टा केनाऽपि नो स्वयम् ।
नापि तेषां प्रतीच्छायाः सहवासः कुतो ननु ? ॥ २ ॥
कवीनां सहवासेन रसराजो विवर्द्धते ।
काव्यमर्मापि विज्ञातुं सुलभत्वं प्रजायते ॥ ३ ॥
यदहो ! कालिदासाद्या नाद्य प्राणन्ति भारते ।
महाकाव्यप्रणेतृत्वमशक्यं मन्वते जनाः ॥ ४ ॥
परं श्री येवलेग्रामे जनस्थानान्तिके शुभे ।
श्रीमन्मेधाव्रताचार्या रचनाकुशलास्सदा ॥ ५ ॥
प्रणीतं तैर्महाकाव्यं काव्यलक्षणभूषितम् ।
नायको धर्मवीरश्च श्रीदयानन्दयोगिराट् ॥ ६ ॥
सङ्कुलं सदलङ्कारै र्निर्मलं सृष्टिवर्णनैः ।
सद्विचारैस्तीव्रभावैर्महाकाव्यं सुगुम्फितम् ॥ ७ ॥
आर्यव्रतो दयानन्दः कविर्मेधाव्रतो महान् ।
प्रह्वीकृतो भारतोऽयं सदाऽन्योऽन्यप्रभावतः ॥ ८ ॥

दिनांक : १६–१०–१९४६ काशीनाथ रघुनाथ

विद्वाभूषण कविवर पं० ओङ्कारमिश्र 'प्रणव' साहित्याचार्य-शास्त्री ने महाकवि के विषय में निम्न उद्गार प्रकट किये हैं—

विटप सुवृन्दन में चन्दन है, श्रेष्ठ जैसे
गिरियों में 'गिरिराज गौरव' का गान है।
जैसे वारिधाराओं में गङ्गा का महत्त्व उच्च
जैसे तारकाओं में ताराधिपति प्रधान है।
सरों में सुगण्य जैसे मानससरोवर है,
पक्षियों में पाया जैसे राजहंस मान है।
देशों में 'प्रणव' जैसे भारत विशेष, तैसे
कोटि कवियों में मेधाव्रत भी महान् है॥ १॥

कविकुलचूडामणि कलिदास ने विशेष—
उपमा के रूप ही अनूप प्रकटाये हैं।
कवियों की बानी ने बखानी है कहानी जो कि—
भारवी ने भव्य अर्थ गौरव जताये हैं।

ललित पदावली से दण्डी ने रसिक जन–

मानस–मयूर मस्त मञ्जुल नचाये हैं।

पर मेधाव्रत तेरी चतुराई को बखाने !

तीनों गुण तेरी एक मेधा में समाये हैं॥ २॥

फहरी है तेरी आज कीरति-पताका नभ

रची दिव्य 'दयानन्दलहरी' ललाम है।

तेरी 'दिग्विजय' ने ही दिग्विजय किया है आज

'प्रकृति सौन्दर्य' सजा साज अविराम है।

'कुमुदिनीचन्द्र' में है चांदनी विकासमयी

प्रतिमा-सुधा का स्रोत बहै अविराम है।

'प्रणव' सुकविकुञ्ज क्यों न विकसेंगे पुञ्ज,

मेधाव्रत उदित दिनेश सुखधाम है॥ ३॥

वैदिकनिनादिनी हो तेरी काव्यवीणा सदा

सुन्दर स्वरों में भरी देशभक्ति लय हो।

गीरवाणवाणी का हो नित्य भरा कोष रहे,

हृदय-सदन तेरा सत्य मणिमय हो।

कीर्ति कमनीय हो विनीतता-प्रकाशपूर्ण,

भद्रभावनाओं का वैभव उदय हो।

'प्रणव' प्रभु का होवे पावन प्रसाद पुण्य–

मेधाव्रत ! तेरा भूमिमण्डल में जय हो॥ ४॥

दिनांक : १५–८–१९४५ ओंकार मिश्र 'प्रणव'

काव्यधुरीण, आशुकवि, अखिलेश शर्मा साहित्यरत्न ने अपनी सम्मति यों प्रकट की है :—

जिमि त्रेता, मुनि 'वाल्मीकि' कीन्हीं 'रामायण'।
द्वापर 'वेदव्यास' करी भागवत-रसायन ॥
पुनि कलियुग मँह 'अश्वघोष' कविराज कलाधर।
'बुधचरित' लिखि सुलभ सुधा कीन्हेउ वसुधापर ॥
तिमि 'मेधाव्रत कविरत्न' हूँ, निजपावन प्रतिभा खरचि।
आनन्दसिन्धु प्रगढेउ अगम, 'दयानन्दकविता विरचि ॥ १ ॥
जयति ब्रह्म-कुल-कमल-मित्र, करुणावरुणालय।
कविता-कामिनि-कान्त, शान्त, निर्भ्रान्त महाशय ॥
'दयानन्ददिग्विजय', 'कुमुदिनीचन्द्र' प्रकाशक।
'दयानन्दलहरी' सु 'प्रकृतिसौन्दर्य' विकाशक ॥
आर्यकवीश्वर तव प्रलय लौ, छाय रहै यशसुरभि महि।
'श्रीमेधाव्रतकविरत्न' नित, चिर जीवो 'अखिलेश' कहि ॥ २ ॥
नमस्कारशतबार आर्यकन्याशिक्षारत।
कविता-कानन-कुञ्ज-कलित-कोकिल 'मेधाव्रत' ॥
जयति दिव्य दिननाथ, देववाणी नलिनी के।
सुधी, सरल, संयमी, सुअन सरस्वति जननी के ॥
गुणगरिमा गावत गिनत, गुरुजन गौरव गर्वरत।
अभिवन्दत अनुमानियत, अपवर्गहु आनँद अपत ॥ ३ ॥

अखिलेश शर्मा

इसके साथ ही हम यह भूमिका समाप्त करते हैं।

महावीर

कवेर्वृत्तम्

भारतभूरियं जनिखनिरनेककविरत्नानाम् ये हि जेगीयमानत्रिलोकी-कीर्त्तयः सरसरस्वतीमूर्त्तय इव स्नपयामासुः स्ववचःपीयूषप्रवाह-पूरै र्जगन्ति भेदयामासुश्च ब्रह्मावदातविद्ययाऽपरस्सहस्रभानुभेद्यानि तमांसि। इहैव तमोऽपहब्रह्माहितमनसः सुमनस आदिकवेर्वाल्मीकेः प्रसस्यन्दे रामायणनिर्झरस्यन्दः। इहैव कविकुलभाललामः कलिदासो जगौ प्रत्यर्थिसार्थमानसकूलङ्कषं रघूणां विजयम्। इहैव च रसास्वादैक-चतुरा दण्डिमाघबाणप्रभृतय आह्लादयामासुः सामाजिकसहृदयान स्वकृतिभिः। धृतसकलकविगणगुणावतारो विहितसरस्वतीगलहारः साहित्यसागरस्वच्छन्दविहारो जयत्यद्यापि समस्तारातिदन्तिकुम्भभिदुर आचार्य मेधाव्रत आर्यकवीन्द्रो गजेन्द्रः यस्य दयानन्ददिग्विजयनाम्नीयं कृतिस्तस्य कविकुलमणिशिरः शेखरतामाख्यायति।

अस्ति दक्षिणस्यां दिशि महाराष्ट्रं नाम जनपदः, यत्र हि गिरन्ति तस्य गौरवमुत्तुङ्गशैलशिखराणि, केकीनां केकाभिः प्रतिस्वनन्ति दिगन्त-राणि, शाद्वलपरीतकेदारखण्डेषु च शालन्ते श्यामलसस्यानि। एतज्जन-पदवर्तिनासिक्यमण्डलान्तर्गते येवलाख्यनगरे सरस्वतीपतिरिवापरः सरस्वतीपति र्जगजीवनाभिधो विहितवसतिर्बभूव। सरस्वती तस्य

गृहिणी हिन्दीमहाराष्ट्रीप्रभृतिषु भाषासु प्राप्तपाटवाऽपरा सरस्वती-वासीत्। मिथः सहृदयोऽयं दम्पतियुगलो गेह उदतिष्ठत। पौराणिकता-मातिष्ठमानोऽयं जगज्जीवनमहोदयः कुतश्चित् सत्यार्थप्रकाशेऽधीती दीक्षयामासात्मानमार्यसमाजे। स्वनगरेऽयमार्यसमाजमतिष्ठिपद् याव-द्वेदं पण्डितान् निमन्त्र्य विद्वद्दर्शं च प्रार्थ्य तान् वैदिकधर्मं जनान-वीविदत्।

अमुष्यैव सुगृहीतनामधेयस्य गृहिणो गृहे ७ जनवरी १८९३ तमे खीस्ताब्दे जनिं जग्राह कविरयं मेधाव्रतः। पितृसौजन्यजातपरिष्कारोऽयं शिशुराशैशवादेव प्रखरमतिर्विद्यारुचिश्चासीत्। प्राथमिकांशक्षां ग्राह-यितुमयं पित्रा नागरिकपाठशालां प्रवेशितः। त्रयोदशवर्षोऽयं बालो माहाराष्ट्रीयामन्त्यां कक्षाम् आङ्गलीयां च पञ्चमकक्षामुत्तीर्णवान्। तदनन्तरं समाकर्णितगुरुकुलकीर्तिरस्य जनकः स्वामिदर्शनानन्दसंस्थापितं सिकन्दराबादगुरुकुलमेनं प्रावेशयत्। स्वसब्रह्मचारिभिः सह ब्रह्मचारी मेधाव्रतः स्तोकेनैवानेहसाऽभिन्नहृदयतामातेने। प्रखरमतितया बटु-वर्गस्य निर्दुष्टवाचा च गुरुगणस्य भवान् सममेव सद्यः सम्मानस्य स्नेहस्य च भाजनमजनि। अतीते कस्मिँश्चित् काले गुरुकुलमिदं सिकन्दराबादतो फरूखाबादं ततश्च वृन्दावनं प्रत्यपद्यत। भवाँश्चापि कुलानुविधायितया न तदपाक्रमीत् अष्टमकक्षामधीयानस्य धीमतो मेधाव्रतस्यासीत् पदपारावारपारदृश्वता। व्याकरणसाहित्यदर्शनादीन् गम्भीरविषयान् विषयीकृतवान् भवानल्पवयस्येव। न केवलमेतावदे-वापितु चित्ररचनायां सङ्गीतकलायां चापि परमकौशलमचकलद्भवान्।

छात्रावस्थायामेवायं काव्यरचनप्रवीणस्तत्प्रवणश्चासीत्। गुरुकुल-मधिवसन्नयं स्वमनोरमरचनाः परिषत्सु पारिषद्यान् अशुश्रुवत्। मधुरया गिरा यदाऽयं स्वरचितश्लोकान् पठितुमुपाक्रंस्त तदा किमिव वक्तव्यं विदुषाम्। अविदुषोऽप्यमूमुह्यन् न्यधाच्च सकृज्जातपरिचयस्यापि सचेत-सश्चेतसि चिरन्तनीं स्मृतिम्। एवंविधएवावसरे प्रख्यातपरिव्राट् स्वामी अच्युतानन्दमहोदयो भवत् कवितां निशम्य प्रासीदत्तरां नितरां स्वर्ण-पदकेन च भवन्तं व्यभूषयत्। महाकविप्रतिस्पर्द्धिनीं भवत्काव्यचातुरीं

निरीक्ष्य महान् विद्वान् डॉ० भगवान् दासोऽप्याश्चर्यराजिमाविर्भावयामास यादाकादाचित्कानि च पत्रकाणि प्रहाय वटौ मेधाव्रते शुभाशीराशीनवाकिरत्। समस्यापूर्त्तावपि भवानप्रतिरथपाटवं प्रपेदे। एकैकां समस्यां द्वित्रैश्छन्दोभिरपूपुरत्। भवत्कवितास्तदानीन्तन्यां प्रयागीयायां शारदापत्रिकायां प्राकाश्यन्त। अष्टमश्रेण्यामेव पठताऽनेन प्रकृतिसौन्दर्यं ब्रह्मचर्यशतकं च ललितपद्यमये पुस्तके व्यरचि।

हन्त दुर्विधविधे! विद्यासु क्रममाणस्य चातुर्मुखीणां प्रगल्भतां बिभ्राणस्य द्वादशश्रेण्यामधोयानस्यास्य पटोर्वटो व्यजृम्भन्त कष्टनिकाये काये दुरन्ता यकृद्गुल्मप्रभृतयो महाव्याधयः। प्राणान्तोदर्कान् व्याधीन् विभाव्य जनकोऽस्य जगज्जीवनमहोदयो गुरुकुलत्याग एव श्रेयोऽपश्यत्। सास्रनेत्रै र्गुरुभिस्सतीर्थ्यैश्चाऽऽं गन्तुमन्वज्ञायत चिरं च चेखिद्यमानचेतोभिर्व्यरह्यत।

स्वाभिजनभुवोऽनुलोमजलवायुमवाप्यासौ सद्य एवोल्लाघतां भेजे। स्वगृह एव च निवसन् भगवतीं सरस्वतीं समराधयत्। पञ्चविंशतिवर्षो भवान् येवलानिवासिन एकनाथमहोदयस्य तनयां स्मेरमुखीं कम्रगात्रयष्टिं प्रयतहृदयां रमणीजनोचितशीलगुणसमन्वितां पतिदेवत्याम् आहुतिमिव, चन्द्रप्रभामिवापरां चन्द्रप्रभां पर्यणेष्ट, ऋचं स्वाहेव या पतिमनुवर्तिनी स्वालङ्करणानि विक्रीय कुमुदिनीचन्द्रपुस्तकं प्रकाशयितुं पत्ये साहाय्यं व्यतरत्। भवान् कोल्हापुरीयवैदिकविद्यालयस्याध्यक्षपदे न्ययुज्यत। तत्पदमधिष्ठाय भवान् स्वकर्त्तव्यम् अनतिपातं प्रत्यपालयत्। एतदन्तरैव युद्धज्वरो भारतं व्याप्नोत् प्रत्यहं च शतशो जनान् अकालकरालगाले न्यजेगिल्यत। भवानपि तज्ज्वराक्रान्तो विद्यालयं विहाय येवलानगरं प्रास्थित। स्वस्थेजाते भवति कोल्हापुरीयेण महाराजेन पुनर्भवान् तत्पदे कार्यं कर्त्तुमाहूयत, परमिदानीं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रतया सरस्वतीं सिषेविषु र्भवाँस्तत् प्रस्तावं नाङ्गीचकार्षीत्।

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ती" त्याभाणकं कः साहित्यरसिको नो वेत्ति! गद्यनिकषकषायिताः कनिष्ठिकाधिष्ठिताग्रगण्या अपि कवयो द्रागिव निपतिताः कालिमानं यान्ति न चोत्सहन्ते तदभिमुखीभवितुम्।

कियन्तो हि च्छान्दसा एतदपरीक्षिता एव कवित्वं लभन्ते कविम्मन्याश्च भवन्ति। अल्प एवेह गद्यशाणोल्लीढा कृतिनो येषां कृतिरयस्कारपरिघ-प्रहारसम्पर्किमणिरिव द्योतते शोयते च सुतराम्। स्वशेमुष्याहितविश्रम्भः कविर्मेधाव्रतोऽपि बुद्ध्येकपणेनापीषदापं कवित्वं कामुक आत्मानं शाणयितुं कुमुदिनीचन्द्राख्यं गद्यमयमुपन्यासं विन्यास्थत्। विद एव विदाङ्कुर्वन्तु तस्याविनश्वरीं रजनीमणिविजित्वरीं च शुभ्रद्युतिं किम्मुधा मया लेखनीरेखाभिः कलङ्कायितेन। केवलमेतावदेवात्र वक्तव्यं यत् सकलसंस्कृतसाहित्य उपन्यासविधायास्तदेव निदर्शनं, सैव चाद्या कृतिरिति संस्कृतसाहित्ये उपन्यासविधायाः सर्वप्रथमोऽयं प्रवर्तकः कविः।

प्रसङ्गोऽयं १९२४ तमस्य ख्रीस्ताब्दस्य। एकतस्तावन् नेदीयो नेदीयस्तरं प्रत्यासीदति मथुरायां भाविनी सुभगङ्करणी दयानन्दजन्मशताब्दी। अपरतश्च प्रसूतिकारुग्ग्रस्ताया अनुदिनं गलन्त्यङ्गान्यर्द्धाङ्गिण्याः। चातुर्मासिकः स्तनन्धयः शिशुरपि दिविषत्पारिषद्यताम् अगात्। अगदङ्कारा गृहम् आगच्छन्ति निर्गच्छन्ति च। गदपरिणामभीरवश्चिन्तापरा जीवितं प्रति च मन्दाशया बान्धवाः। दयानन्दजन्मशताब्द्याः क्षेमङ्करेऽवसरे नारायणस्वामी काञ्चिद् माङ्गलिकीं कृतिं प्रस्तोतुं समादिशत् कविम्। उभयतः पाशारज्जूः कवेः। शङ्कापङ्कमुद्धूय कविस्तत् कर्तुं निश्चिकाय द्वापञ्चाशद्भिश्च श्लोकैः ऋषिदयानन्दस्यानन्दकरीममन्दयशोगाथाम् अजप्रथद् यां कविराजजगन्नाथरचितगङ्गालहरीप्रतियोधिनीं दयानन्दलहरीनाम्नीमद्यापि पापठ्यमानानां पाठकानां न तृप्नोति स्वान्तम्।

सूरतनगरे 'नेशनल कालिज' इत्याख्ये महाविद्यालये भवान् प्राध्यापकत्वेन न्ययुक्त। सहृदयतया मधुरशीलतया पाण्डित्यप्रकर्षतया चात्रभवान् समस्तच्छात्रैः प्राध्यापकैरन्यैश्च जैनयवनादिमतावलम्बिभिः सर्वैर्जनैः सह सुहृत्तां समपीपदत्। १९२६ तमे ख्रीस्ताब्दे प्रसिद्धार्यनेता आनन्दप्रियमहोदयो भवन्तम् इटोलाकन्यागुरुकुलस्याचार्यपदम् उररीकर्त्तुम् अभ्यार्तथत्। भवानपि स्त्रीशिक्षां महनीयां प्रथमतश्च परिगणनीयामाकलयंस्तत् स्वीकृतवान्। नेशनलमहाविद्यालय-

त्यागावसरे सर्वैश्छात्रैः प्राध्यापकगणेन च भवान् सम्मानपत्रप्रमाण-प्रदानपुरस्सरं सम्मान्य प्रगमितः। कन्यामहाविद्यालयोऽयं तदन्तरं वटोदरनगरे स्थानान्तरितः। तत्रैव विद्यालय आचार्यपदमलङ्कुर्वाणो भवान् दयानन्ददिग्विजयस्य पूर्वार्द्धमलिखत्। इटोलामहाविद्यालयमधि-वसन् दिवङ्गतायां प्रथमपत्न्यां बहुभिः सुहृद्भिः सम्बन्धिभिश्च साग्रहमनु-रुद्धो भवान् द्वितीयां पत्नीमवृणीत, परं पतिप्रतीपवर्तिनीमिमां पत्नीमचि-रेणैव विच्छिद्य प्रयतात्मा कविरात्मनिरतोऽभवत्। वटोदरमहाविद्या-लयस्य वार्षिकोत्सवे हरविलासशारदामहाभागानां सभापतित्वे भवान् विद्यालयगतच्छात्राभिरध्यापकैश्च सम्मानपत्रप्रदानपुरस्सरं समादृतः।

आशुकविर्भवान्। विविधावसरेषु विदुषो महापुरुषानुपश्लोकयितुं सद्यः पद्यनिबन्धनेन भवतः कविताचातुरी प्रचाकटीति। १९३४ तमे ख्रीस्ताब्दे वटोदरीयप्राच्यविद्यामहासम्मेलने बौद्धविदुषा राहुलसांस्कृ-त्यायनेन सजुः समागतं प्राच्यविद्यामहार्णवं काशीप्रसादजायसवालम् अविलम्बमेव श्लोकद्वयं विरच्यास्तौद् भवान्। परं धनगुरुगर्वाणामन्येषां वा चाटुकारितां प्रति तु मान्थर्यातिशयमेवावहति भवत्कविता। न क्वचिदश्लीलता पदमपि निदधाति भवत्काव्ये। यत् कनिष्ठिकाधिष्ठित-कालिदासप्रभृतयो गणमान्याश्च कवयो मलीमसश्रृङ्गारकलङ्केन सरस्वती-सद्मादूदुषन् मन्ये तदेव परिमार्ष्टुं भवतो वाचां प्रचारः।

१९३९ तमे ख्रीस्ताब्दे कवीन्द्रोऽयं वटोदरकन्यामहाविद्यालयस्य त्यक्ताचार्यकार्यभारो येवलोपमण्डलान्तर्गतनान्दूरग्रामस्य पुण्यारण्ये स्वयोगिसंन्यासिपितृनामस्मारकत्वेन निर्मिते नित्यानन्दनिवासे सद्मनि विहितवसतिरासीत्। नान्दूरग्रामाद् मनाग् दवीयसि अगस्त्यगिर्यु-पत्यकायां गिरिणदीत्रयसङ्गमस्थल आम्रादितरुविलसितं भूभागम् अक्रीणात् तत्र च आम्रकनारिकेलदृढबीजप्रभृतीन् फलग्रहीन् समारोप्य तदभिषेकार्थं च कूपं निखाय्य योगमभ्यस्यन् तदधिष्ठित्वान्। एकदा भवान् योगिजनान् मार्गयितुं स्वाश्रमाद् निरगात्। विभिन्नस्थलेषु समटाट्यमानः पोठोहारगुरुकुलस्याचार्यपदमलङ्कुर्वतां योगनिष्णातानां श्रीमुक्तिरामोपाध्यायमहाभागानाम् आत्मानन्दापराभिधेयानामभ्याशमा-

गमत् । तत्र च योगं शिक्षमाणः कञ्चित् कालमवात्सीत् । अत्र भवन्तं योगिगुरु र्गुरुकुलाचार्यपदं स्वीकर्त्तुमचकथत् परं योगरुचिर्भवान् तत् सविनयं न्येषधीत् । तन्निशम्य भवत्त्यागवृत्तिं योगिगुरुर्भृशमशंसीत् ।

तत आरभ्याद्ययावद् भवान् यमनियमपालनपरो योगं युञ्जानः समये समये गीर्वाणवाण्यां ग्रन्थान् प्रणयन् भारतस्य प्रसिद्धेषु सर्वेषु नगरेषु वैदिकधर्ममुपदिशन् मुनिवृत्त्या सुखं कालं नयति । एतदन्तरैव भवान् दयानन्ददिग्विजयस्य पश्चार्द्धमपि प्राणैषीत् । बहुत्र ब्रह्मादिपदम् अधिष्ठाय वेदपारायणयागानपि भवानयाजिष्ट । एकदा वृन्दावनगुरुकुलमहाविद्यालयवार्षिकोत्सवे सरस्वतीसम्मेलनस्यान्यत्र च बहूनां कविसम्मेलनानामध्यक्षपदं भवानलमकार्षीत् । झज्जरगुरुकुले च भवान् बहुकालात् प्रतिवर्षमुच्चग्रन्थान् वटून् पाठयितुं समायाति । स एव च लेखकस्यापि सौभाग्यावसरो यत् सरस्वतीमकरन्दबिन्दून् आस्वदितुं भवच्चरणारविन्दचञ्चरीकतां प्रपन्नः । अद्यत्वे भवान् नरेलाकन्यागुरुकुलस्याचार्यतामावहति । अद्यापि भवानेकसप्ततिवर्षदेश्यो योगपरायणो नियताहारविहारेण विहितकल्प इवात्मानं मनः कायं चोन्नयमानस्तरुणवत् स्मेरवदन आस्ते । जीग्यासुः शतं समाः कवीन्द्रा इत्याशास्य भगवन्तं प्रार्थयामहे ।

उपरि लिखितः प्रबन्धांशोऽयं महाकविजीवनकाल एव १९६२ तमे खीस्ताब्दे निबद्धः । परमद्य १९७९ तमस्य खीस्ताब्दस्य मार्चमासि तु महाकवेरस्य दिवंतगस्यापि चतुर्दशवर्षाणि समतीतानि । दिल्लीप्रशासनान्तर्गतं नरेलाकन्यागुरुकुलमेवाधिवसन्नयं महाकविः स्वजीवनस्यान्तिमं कालमनयत् । दक्षिणे स्वजन्मभुवि नासिक्यमण्डकान्तर्गते येवलाख्यनगरे नवम्बरमासस्य २१ तमे दिनाङ्के १९६४ तमखीस्ताब्दे तदनुसारं शनिवासरे, मार्गशीर्षे कृष्णपक्षस्य तृतीयायां २०२१ तमे विक्रमाब्दे भौतिकवपुर्विहाय यशः शरीरेण जीवतीत्यलं तावत् प्रसङ्गविस्तरेण ।

विदुषां वशंवदः

आचार्य–महावीरः

॥ श्रीः ॥

महाकविमेधाव्रतविरचितं

दयानन्ददिग्विजयं महाकाव्यम्

अधीतसाङ्गोपाङ्गवेदचतुष्टयाचार्यमहावीरकृत-
विजयमङ्गलाख्यया व्याख्यया समुपेतम्

प्रथमः सर्गः

"यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥"
श्रीधनीरामतो जातो लक्ष्मीदेवीतनौ सुधीः ।
साङ्गोपाङ्गवेदेऽधीती महावीरोऽत्र टीकते ॥
"इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥"
"तद् विद्वांसोऽनुगृह्णन्तु चित्तश्रोत्रैः प्रसादिभिः ।
सन्तः प्रणयवाक्यानि गृह्णन्ति ह्यनसूयया ॥"
येषां कृपालवेनाहं वाग्देवीं समराधिषि ।
तेभ्य एवोपहारोऽयं प्रीणन्तु गुरुदेवताः ॥

महाकविरयं मुनिर्मेधाव्रतः परमनिर्वृतिं प्रति प्रयतमानः 'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च । करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्' इति प्राचीनविपश्चिद्वचोबलात् सत्काव्यरचनस्य चतुर्वर्गफलप्राप्तये परमोत्कृष्टसाधनतां पश्यन् 'सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नामकः सुरः । नाति स्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह' 'काव्यं विशिष्टशब्दार्थसाहित्यसदलंकृति' इत्यादिलक्षणोपेतमद्यावधिविख्यातसकलकाव्यातिशायिसप्तविंशतिसर्गावसायि–अनवद्यपद्यं नायकविजयवद्यं भूता-

र्थाभिधं महाकाव्यं रिरचयिषुः, 'आदौ नमस्क्रियाऽऽशीर्वा वस्तुनिर्देश एववे'ति साहित्यदर्पणोक्तनमस्क्रियाद्येकतमस्य सर्गबन्धकृते प्राथमकल्पिकत्वाच्छिष्टाचारपरिपाटीप्राप्तत्वाच्च देवं निनंसुः, काव्यकृतेऽवश्यप्रतिपत्तव्यां शब्दार्थसम्बन्धपारदृश्वतां प्रपित्सुः, शब्दार्थसम्बन्धस्य च 'सर्वेषां तु सनामानि रूपाणि [कर्माणि] च पृथक्पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे' इति स्मृतिप्रामाण्याच्छ्रुतेरेव मूलोद्गमस्थानभूतत्वाच्च छ्रुतेश्च 'एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः' इत्यादिप्रामाण्याद् ब्रह्मण एव योनिभूतत्वात् तदेवाभिनन्दति—

दयामयानन्दनमूलशङ्करं
सरस्वतीशं निगमेन्दुसागरम्।
विभुं निराकारमजं जगत्सृजं
भजामि मेधार्जनतो महागुरुम्॥ १॥

दयामयेति। दया प्रकृता निसर्गसिद्धा यस्मिन् स *दयामयः*। यस्तु प्राचुर्य्यपर्यायः प्रकृतशब्दः सोऽत्र न, ब्रह्मणो दयायाः प्राचुर्य्येण व्यावृत्तित्वासम्भवात्। तथा चात्र प्रकृतपदं निसर्गपर्यायमर्थापयामासुर्वृत्तिकृतोऽपि केचित्। आनन्दयतीत्यानन्दनम्। ण्यन्ताद् भावे ल्युट्। तस्य मूलमेकमात्रकारणम्। शङ्कर्तुं शीलं यस्य सः शङ्करः। 'कृञोहेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' (पा. ३।२।२०) इति ताच्छील्ये टप्रत्ययः। पदत्रयस्य विशेषणविशेष्यभावसमासः। तं सरस्वतीशं वाणीपतिम्। सरो जलं, 'सरो नीरे तडागे चे'ति रुद्रः। तदौपम्याज् ज्ञानमपि सरस्तदस्यामस्तीति मतुप्। 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग् वाणी सरस्वती' इत्यमरः। तस्या वाण्या ईशः। 'अत्र शेषे षष्ठी' (पा. २।३।५०) इति समासः, न तु 'स्वामीश्वराधिपति' (पा. ३।२।३९) इत्यादिना समासस्तत्र पर्यायवाचिनां ग्रहणादेवान्येषां पर्यायवाचिनां व्यावृत्तिः। प्रतिपदविधानाभावात् समासनिषेधो न भवति। अत्रेशपदेन सरस्वत्यास्तदधीनत्वं व्यज्यते। *निगमेन्दुसागरं* निगमोवेदः, 'निगमो वाणिजे पुर्य्यां कटे वेदे' इति

विश्वः। निगम एवेन्दुश्चन्द्र इति रूपकालङ्कारः। तथा च चन्द्रालोके 'यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाऽप्युपरज्यते। उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते' इति रूपकलक्षणम्। तस्य सागरः। यथा समुद्रश्चन्द्रयोनिस्तथैव ब्रह्म वेदयोनिः। तथा च 'शास्त्रयोनित्वात्' (वे. १।१।३) इति वैयासिकं वचः। अत्र च 'महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनस्सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्मेति' शाङ्करो गोः। विभुं सर्वव्यापकं। *निराकारं* निर्गत आत्यन्तिकत्वेन पृथग्भूत आकारो यस्मात् स आकाररहित इत्यर्थः।' 'अनेकमन्यपदार्थे' (पा. २।२।२४) इति बहुव्रीहिः। तस्य निराकारत्वे 'न तस्य प्रतिमास्ति', 'अकायमव्रणमस्नाविरम्' इत्यादिश्रुतिरन्वेष्या। स्यात् स परमेश्वरः कदाचित् साकार इति मा कश्चिद् एवं मंस्तातः साभिप्रायं विशिनष्टि *अजमिति*। न जायत इत्यजः। 'अन्येष्वपि दृश्यते' (पा. ३।२।१०१) इति अप्रत्ययः। उत्पत्त्यादिरहित इत्यर्थः। परिकरालङ्कारोऽत्र, तथा चाह विश्वनाथः—'उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरोमतः'। जगत्सृजतीति *जगत्सृक्*। 'क्विप् च' (पा. ३।२।७३) इति कर्त्तरि क्विप्। जगदुत्पादक इत्यर्थः। तादृशं *महागुरुमादिशिक्षकम्*। 'स पूर्वेषाम् अपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' (यो. १।२६) इति तस्य महागुरुत्वं प्रसिद्धम् एव। पितॄणामपि पितरं वा तेषां पालकत्वात्। 'गुरुर्गीःपति पित्राद्यौ' इत्यमरः। *मेधार्जनतः* मेधाप्राप्तिहेतोः। 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' (पा. २।३।३५) इति हेतौ पञ्चमी। गुणाऽस्त्रियाम् इति प्रायिकं 'बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेरि'ति वार्तिकप्रयोगात्, 'धीर्धारणावती मेधा' इत्यमरः। तादृश्या धारणावत्या धियः काव्यप्रबन्धकृते प्रथमपरिगणितत्वात् तस्याश्चाधिगमः परमात्मनः सकाशादेव, तस्माद्धेतोस्तं *भजामि* उपासे। कविरहम् इति शेषः। *श्लेषालङ्कारेणात्र* मूलशङ्करो दयानन्दोऽपि ध्वन्यते। तत्पक्षे विभुं निराकारमजमिति विशेषणत्रयं तु तदात्मपक्षे बोध्यम्। आत्मनोऽजत्वं तस्य नित्यत्वात्। जगदुद्धारकत्वाच्च तस्य जगत्सृक्त्वम्। वेदविद्योद्धारकत्वात्तस्य निगमेन्दुसागरत्वम्। सरस्वतीशपदेन कवेर्मातुः सरस्वतीनाम्न्याः पतिः कवेः पिताऽपि व्यज्यते। तत्पक्षेऽन्यानि पदानि यथायथं विपरिणमयितव्यानि। तथा च कवेर्मित्राणि सनातन-

धर्मधुरीणः राजकविर्दयाशङ्करः, शुक्लतीर्थगुरुकुलस्याचार्यो मयाशङ्करः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्याचार्य आनन्दशङ्करश्चापि ध्वन्यन्ते। अत्र सर्गे ४९ श्लोकपर्यन्तं वंशस्थवृत्तम्, तल्लक्षणं च यथा वृत्तरत्नाकरे 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' ॥ १ ॥

प्रथम अर्थ :—ईश्वरपरक—जो कल्याणकारी परमेश्वर विद्या का स्वामी है, जैसे सागर से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई वैसे ही जिससे वेदों का आविर्भाव हुआ, जो व्यापक, निराकार तथा अजन्मा है, जो जगत् का स्रष्टा है, जो गुरुओं का भी गुरु है, ऐसे दयामय आनन्द परमेश्वर को मैं (कवि) विवेकशालिनी बुद्धि की प्राप्ति के लिए भजता हूँ।

द्वितीय अर्थ :— दयानन्दपरक—वाणी के स्वामी, वेदरूपी चन्द्र के सागर, समर्थ, निराकारोपासक, भारतभाग्यविधाता, दयामय, आनन्दमय, मूलशङ्कर नामके गुरुवर दयानन्द महात्मा का, सत्य और असत्य में विवेक करने वाली बुद्धि के लिए मैं (कवि) आश्रय लेता हूँ।

तीसरा अर्थ :—कवि के पिता श्री जगजीवनपरक—सरस्वती (कवि की माता का नाम) के पति, निगम = काव्यशास्त्र के चन्द्र = कवि मेधाव्रत के सागर = उत्पादक = पिता (जगजीवन जी) दयालु, प्रसन्न हृदय वाले, मूलशङ्कर = सन्तान हितकारी, विभु = सिद्धान्त पालन में समर्थ ओंकारोपासक, महागुरु = महान् पिता जगजीवन को मैं अपनी मेधाशक्ति के बढ़ाने में मुख्य निमित्त होने से श्रद्धासहित इस शुभ कार्य में स्मरण करता हूँ।

चौथा अर्थ :—साहित्य वाचस्पतिराजकवि श्री दयाशङ्कर जी जो सनातन धर्म के कट्टर पक्षपाती तथा समर्थ विद्वान् थे और महाकवि आचार्य मेधाव्रत के साथ परम मित्रता रखते थे, उन पर घटता है।

पाँचवाँ अर्थ :—शुक्लतीर्थ गुरुकुल के कुलपति तथा आचार्य श्री पं० मयाशङ्कर जी पर घटता है। ये भी कवि के परममित्रों में से एक समर्थ विद्वान् थे।

छठा अर्थ :—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य श्री आनन्दशङ्कर विषयक है। एक अग्रणी विद्वान् एवं महनीय विश्वविद्यालय के आचार्य होने के कारण कवि ने ऐसे महान् विद्वान् के स्मरण द्वारा मङ्गलाचरण करना उचित समझा ॥ १ ॥

पितृभूतं सरस्वतीशर्माभिवाद्येदानीं मातृभूतां सरस्वतीमभिवादयते—

ददाति याऽऽनन्दममन्दमात्मने
दयालवे दिव्यगुणा सरस्वती ।
नमाम्यमुं ब्रह्मसुतां कवीश्वरैः
सदा स्तुतां मातरमात्ममङ्गलाम् ॥ २ ॥

ददातीति । *या दिव्यगुणा* अलौकिकसत्त्वा । 'सत्त्वशौर्यसन्ध्यादिके गुणः' इत्यमरः । *सरस्वती* सुरभारती । *दयालवे* दयादिगुणशालिने । दयितुं शीलमस्येति दयालुः 'स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्राभ्य आलुच्' (पा. ३।२।१५८) इत्यालुच्प्रत्ययः । *आत्मने* सहृदयाय । *अमन्दमनल्पम्* । 'मूढाल्पपटुनिर्भाग्या मन्दा स्युरि'त्यमरः । आनन्दं सौख्यं । ददाति वितरति । तादृशीम् अमूं ब्रह्मसुतां ब्रह्मणः प्रभवाम् । वेदत्रय्या हेतुभूतत्वाद् ब्रह्मण एव काव्यस्य प्रथमोद्गमः । *आत्ममङ्गलां* प्राणिमात्रहितकरीम् । आत्मना मङ्गला इति शैषिकोषष्ठ्यत्र ज्ञेया न त्वाशिषि, आशोरभावात् । *मातरं* हितकर्त्रीत्वात् मातृसमाम् । *कवीश्वरैः* कवित्वकामुकैः पूर्वैः कविमूर्द्धन्यैः । 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' (पा. २।३।३९) इति षष्ठी । प्रतिपदविधानाभावाद् अत्र न समासनिषेधः, षष्ठी इत्यतोऽग्रे प्रवर्त्यमाना एव यागाः प्रतिपदविधानाः । अयन्तु 'न निर्धारणे' (पा. २।२।१०) इति पुन निषेधकरणज्ञापकाच्छैषिकषष्ठ्या एव प्रपञ्चः । *सदा* सर्वेषु कल्पेषु । *स्तुतामभिवादिताम्* । *नमामि* अभिवादये । कवित्वप्रेप्सुरहं तस्मान्मयाऽप्यवश्याभिवाद्या । अत्र श्लेषेण काव्या वा कविता सरस्वत्यपि ध्वनिता । तत्पक्षेऽपि यथायमर्थ ऊह्यः । तथा च सरस्वतीपदेन तन्नाम्नी कवेर्माताऽपि ध्वनिता । तत्पक्षे विशेषणान्यन्यानि यथायथमुहितव्यानि ॥ २ ॥

प्रथम अर्थ :—जो सरस्वती ब्रह्म-सुता (ब्रह्मा की कला) है, जो अलौकिक दिव्यगुणों को धारण करती है, जो सन्तों एवं कविजनों को अनुपम आनन्द देती है, बड़े बड़े कविवरों ने जिसकी निरन्तर स्तुति की है, जो विद्वज्जनों का कल्याण करती है, ऐसी उस सरस्वती माता को मैं नमस्कार करता हूँ ।

दूसरा अर्थ :—जो उत्तम गुणों को धारण किये हुये, मङ्गल करने वाली, सरस्वती नामक मेरी (कवि की) माता, बालपन से मुझे कोमल हृदय वाले पुत्र पर सदा वात्सल्य एवं आनन्द की वर्षा बरसाती रही थी, उस आत्ममङ्गलदायिनी, श्रेष्ठ पुरुषों से सदा प्रशंसित, सन्तान से स्नेह करने वाली सरस्वती माता को मैं भक्ति और प्रेम विह्वल अन्तःकरण से प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

एतदनन्तरं कविर्महापुरुषान् गुरूँश्चाभिवन्दते—

दयालवः प्राणिषु सौख्यहेतवः
समस्तसंसारहितं चिकीर्षकः ।
भवन्ति वन्द्या नहि कस्य साधवः
सदा सदन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ ३ ॥

दयालव इति । *प्राणिषु* शरीरिषु । *दयालवः* सकरुणाः । 'स्पृहिगृहिपतिदायिनिद्रातन्द्राश्रद्राभ्य आलुच्' (पा. ३।२।१५८) इति दयतेराभ्यलुच् प्रत्ययः । *सौख्यहेतवः* सुखजनककर्मणां निमित्तभूताः । सुखस्य कर्म सौख्यं 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (पा. ५।१।१२४) इति कर्मणि ष्यञ् प्रत्ययः । *समस्तसंसारहितं चिकीर्षवः* कर्त्तुमिच्छवः । कृञः सन्नन्तात् 'सनाशंसभिक्ष उः' (पा. ३।२।१६८) इत्युः प्रत्ययः । 'नलोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृणाम्' (पा.२।३।६९) इति षष्ठीनिषेधे कर्मणि द्वितीया। *सदा सदन्तःकरणप्रवृत्तयः* सत्यः श्रेष्ठा अन्तःकरणस्य प्रवृत्तयो येषां ते पुण्यमानसव्यापाराः । यमकालङ्कारोऽत्र, तथा च काव्यप्रकाशे तल्लक्षणं 'अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः, यमकम्' । *साधवः* सज्जनाः । 'साधुर्वाधुषिके चारौ सज्जने' इति मेदिनी । *कस्य* जनस्य *वन्द्याः* स्तोतुमर्हा न भवन्ति । सर्वेषामेवावश्यस्तोतव्यास्ते महान्तः किं पुनर्महाकाव्यस्य रचयितुर्मे न । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः, तस्य च 'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते, यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः' इति मम्मटोक्तलक्षणम् ॥ ३ ॥

जो सज्जनों पर दया बरसाने वाले हैं, जो सब के लिए समान रूप से सुख के हेतु हैं, जो सम्पूर्ण विश्व का हित चाहते हैं, जिनके श्रेष्ठ हृदयों में सदा शुभ

विचार ही उठते रहते हैं, ऐसे सदाचारी महापुरुष किसके लिए वन्दनीय नहीं होते ? अर्थात् सब के वन्दनीय होते हैं ॥ ३ ॥

स्वाहङ्कारं परिजिहीर्षुरिदानीमाह—

महात्मनां ब्रह्मविदां तपोजुषां
क्व सिन्धुगम्भीरचरित्रमुन्नतम् ।
तरङ्गिणीसन्तरणैकहेतुका
क्व चाल्पनौकेव मदीयशेमुषी ॥ ४ ॥

महेति । *महात्मनां* लोकोत्तरपुरुषाणां । *ब्रह्मविदां* परमात्मदर्शिनाम् । ब्रह्म विदन्तीति ब्रह्मविदः कर्तरि क्विप् प्रत्ययः । *तपोजुषां* तपसि रतानाम् । *उन्नतमुच्चम्* , 'उच्चप्रांशून्नतोदग्रोच्छ्रितास्तुङ्गे' इत्यमरः । *सिन्धुगम्भीरचरित्रं* सिन्धुरिव गम्भीरं सिन्धुगम्भीरम् । 'उपमानानि सामान्यवचनैः' (पा. २।१।५५) इति समासः । तादृशं चरित्रमिति 'विशेषणं विशेषेण बहुलम्' (पा. २।१।५६) इति कर्मधारयः । अत्र चरित्रस्य सिन्धुसमगम्भीरत्वे सत्यप्युन्नतत्वव्यतिरेकाद् व्यतिरेकालङ्कारः । तल्लक्षणं च यथा काव्यप्रकाशे 'उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः' । तेषां तथाविधं चरित्रं क्व ? तरङ्गिणी नदी, 'अथ नदीसरित् तरङ्गिणी' इत्यमरः । तरङ्गा अस्यां सन्तीति तरङ्गिणी । 'अत इनिठनौ' (पा. ५।२।११५) इतीनिः । तस्या सन्तरणायैकमात्राल्पहेतुर्या सा *तरङ्गिणीसन्तरणैकहेतुका* । अल्पे कन् प्रत्ययः । मयूरव्यंसकादित्वात् साधुः । *अल्पनौकेव* क्षुद्रतरणिरिव । *मदीयशेमुषी* मम मतिः । क्व ? शेते इति शेः मोहः । 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' (पा. ३।२।७५) इति विच् तं मुष्णातीति शेमुषः । मूलविभुजादित्वात् कप्रत्ययः । ततश्च गौरादित्वात् स्त्रियां ङीष् । द्वौ कशब्दौ प्रयुज्येतेऽत्यन्तासम्भवे सदा इति वचनात् महापुरुषचरित्रचित्रणसुतरामसम्भवमिति द्योत्यते । नहि साधनासमर्थो महारम्भायोत्सहते परं स्वप्रबन्धस्यैव गरिम्णे सुदुष्करमपि साहसिकमवश्योपक्रान्तव्यम् । तुलनीयमत्र कालिदासः, 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयामतिः'। तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।' (रघु.१।२।) ॥४॥

कहाँ तो ब्रह्मज्ञानी, तपस्वी महात्माओं का समुद्र के समान गहन और हिमालय सा ऊँचा चरित्र ? और कहाँ केवल मात्र नदी को पार करने वाली छोटी नैय्या की तरह मेरी अल्प बुद्धि ? अर्थात् आदित्य ब्रह्मचारी महान् दयानन्द के चरित्र-वर्णन की क्षमता मुझ जैसे अल्पविद्या वाले लोगों के लिए अत्यन्त कठिन है ॥

तदेव कविः पुनराह—

बुधैकगम्ये चरिते मनोरमे
ममाबुधस्येह गिरामगोचरे ।
अयं प्रयासो विबुधैर्विबुध्यतां
जनस्य पङ्गोरिव शैललङ्घने ॥ ५ ॥

बुधेति । बुधैकगम्ये कोविदमात्रेणैव ज्ञेये । 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (पा. ३।१।१३५) इति बुध धातोः कप्रत्ययः । 'सुधीः कोविदो बुधः' इत्यमरः । *मम अबुधस्य* धीविधुरस्य । *गिरां* वाचाम , 'गीः स्त्री भाषा-सरस्वत्योः' इति शब्दार्णवः । *अगोचरेऽविषये* । *इहास्मिन् चरिते* चेतोहरे वृत्ते । *अयं* प्रबन्धलेखनरूपः *प्रयासः* प्रयत्नः । *शैललङ्घने* पर्वतपारगमने । पङ्गोर्जनस्य चरणविकलनरस्य इव । *विबुधैर्विद्वद्भिः* । *विबुध्यतां* विज्ञाय-ताम् । अत्र निदर्शनालङ्कारः । तस्य च लक्षणं 'क्रिययैव स्वगतार्थान्वय-ख्यापनं निदर्शनम्' इति काव्यालङ्कारे । तुलनीयमत्र कालिदासः—'मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् । प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।' (रघु० १।३) ॥ ५ ॥

जिस महर्षि के मनोरम चरित्र को केवल महान् विद्वान् ही समझ सकते हैं, जो चरित्र मेरी वाणी से वर्णित नहीं किया सकता, ऐसे महापुरुष के चरित्र के वर्णन करने का मेरा यह प्रयास वैसा ही है जैसे कि किसी लंगड़े का पर्वत पार करना ॥ ५ ॥

किमाश्रित्य तर्ह्ययं दुःसाहस इत्याह—

गुरोः कृपालोः परिचर्ययाऽर्जितां
कृपातरिं तामधिरुह्य दुस्तराम् ।
अयं दयानन्दचरित्रसागरं
तितीर्षतीयं कविकीर्त्तिकामुकः ॥ ६ ॥

गुरोरिति । *कृपालोर्गुरोः परिचर्यया* सुश्रूषया, 'परिवस्या तु सुश्रूषा परिचर्या' इत्यमरः । *अर्जितां* प्राप्ताम् । *तां कृपातरिं* कृपैवतरिर्नौकेति रूपकालङ्कारः । *अधिरुह्याधिष्ठाय* । रुहेरकर्मकत्वेऽपि 'अकर्मका अपि सोपसर्गा धातवः सकर्मका भवन्ती'ति भाष्यवचनात् कर्मत्वम् । *अयं कविर्मेधाव्रतः* । *कविकीर्तिकामुकः* कविजनोचितयश इच्छुः । 'लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशभ्य उकञ्' (पा. ३।२।१५४) इति कम उकञ् प्रत्ययः । 'श्रितादिषुगमिगाम्यादीनामुपसंख्यानम्' इति समासः । 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे' इत्यादिना काव्यस्य प्रधानफलं यश इति प्रतिपादनात् तदभिलाषः कविजनोचित एव । अतएव इमं सङ्कल्पितं *दयानन्दचरित्रसागरं तितीर्षति* दयानन्दचरित्रं वर्णयितुमिच्छतीत्यर्थः । तरतेः इच्छायां सन् । 'वृतो वा' (पा. ७।२।३८) इतीटो दीर्घत्वम् । तुलनीयमत्र कालिदासः 'मन्दः कवियशः प्रार्थी' ॥ ६ ॥

तो भी कृपालु गुरुजनों की सेवा से मिली हुई कृपा-नौका पर चढ़ कर, दयानन्द-चरित्र-रूपी महासमुद्र को पार करने का मैं साहस करता हूँ और कविजन के योग्य कीर्ति की कामना करता हूँ ॥ ६ ॥

एवं दयानन्दचरिते लब्धप्रवेशस्तद्वर्णनप्रवृत्तिकारकगुणान् 'जगन्नभ' इत्यादिभिः सप्तभिः श्लोकैः प्राह—

जगन्नभोऽन्तान्निगमप्रभाकरे
नितान्तमस्ताचललम्बिमण्डले ।
शनैः शनैरार्यवसुन्धराम्बरं
समावृणोन्मोहतमः कदम्बकम् ॥ ७ ॥

निगमप्रभाकरे वेददिवाकरे । *जगन्नभोऽन्ताज्* जगदेव नभः तस्य प्रान्तात् । *नितान्तं* सर्वथा । *अस्ताचललम्बिमण्डले* अस्तङ्गते सति । 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' (पा. २।३।३७) इति सप्तमी । *शनैः शनैः* मन्दगत्या, 'अद्रुते शनैः' इत्यमरः । 'नित्यवीप्सयोः' (पा. ८।१।४) इति द्वित्वम् । *आर्यवसुन्धराम्बरम्* आर्य्याणां वसुन्धराऽऽर्यावर्तस्तस्याम्बरं गगनप्रदेशम् । आर्यावर्तपरिधिस्तु । *मोहतमः कदम्बकं* मोहोऽविद्या,

'अथ मोहो नृलिङ्गः स्यादविद्यायां च' इति मेदिनी। स एव तमस्तस्य कदम्बकं वृन्दम्, 'वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्यमरः। *समावृणोद्* आच्छादयत् ॥ ७ ॥

संसाररूपी आकाश से वेदरूपी सूर्य सर्वथा अस्ताचलगामी हो चुका था, मिथ्या ज्ञानरूपी घोर अन्धकार धीरे-धीरे भारतभूमि के गगनाङ्गन में छा चुका था ॥ ७ ॥

भयङ्कराज्ञाननिशिप्रमोहतो
निमीलितं भारतलोकपङ्कजम्।
व्यबोधयद्यः श्रुतिबोधदीधिति
प्रभाभिरादित्य इव व्रतीश्वरः ॥ ८ ॥

प्रमोहत इति हेतौ पञ्चमी, अविद्याया हेतोः। *भयङ्कराज्ञाननिशि* गाढाविद्यातमिस्रायाम्। 'पदन्नोमासहृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु' (पा० ६।१।६३) इति निशायानिशादेशः। *निमीलितं* सङ्कुचितम्। *भारतस्य लोकः जनः*, 'लोकस्तु भुवनेजने' इत्यमरः। जातावेकवचनम्। स एव पङ्कजः कमलमिति *भारतलोकपङ्कजः*। पङ्के जातः 'सप्तम्यां जनेर्डः' (पा० ३।२।९७) इति डप्रत्ययः। तं यो *व्रतीश्वरः* आदित्यब्रह्मचारी दयानन्दः। *आदित्य इव* सूर्यवत्। *श्रुतिबोधदीधितिप्रभाभिः* वेदज्ञानसूर्यरश्मिभिः। श्रुतिर्वेदः, 'श्रुतिः स्त्रीवेद आम्नायः' इत्यमरः। तस्य बोधः ज्ञानम्। स एव दीधितिप्रभादित्यरश्मयः। ताभिः *अबोधयद्* उदमीमिलत्। आदित्यरश्मिसम्पर्कात् कमलश्रीर्विकसतीति सर्वप्रसिद्धम्। तथैव दयानन्दो वेदज्ञानेन भारतीयानबोधयत्। पूर्णोपमालङ्कारः। तस्य च लक्षणं 'सापूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च। उपमेयं चोपमानं भवेद् वाच्यम्' इति विश्वनाथः। अत्राज्ञानस्य निशि लोकस्य च कमले समारोपाद् रूपकालङ्कारः। उपमारूपकयोश्च परस्परं सापेक्षत्वात् सङ्करः ॥ ८ ॥

उस समय इस आर्यावर्त में अज्ञानरूपी रात्रि का साम्राज्य था। जैसे रात में कमलिनी मुन्द जाती है वैसे ही भारतीय जनता अज्ञान, प्रमाद, आलस्य

आदि दोषों के कारण सब उन्नतियों से हाथ धो बैठी थी। ऐसे भयङ्कर समय में सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द ने वेदोपदेशरूपी किरणों के प्रकाश से अज्ञानी जनता को निद्रा से जगाया ॥ ८ ॥

भवाटवीध्वान्तपथाभिगामिनं
मनुष्यसङ्घं विषयापगाप्लुतम् ।
प्रबोधदीपप्रभया मुनीश्वरः
प्रकाशकस्तम्भ इवोददीधरत् ॥ ९ ॥

भवः संसारः । स एवाटवी कान्तारस्तस्य ध्वान्तास्तमोबहुला ये पन्थानः । 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' (पा० ५।४।७४) इति समासान्तः अप्रत्ययः । तान् पथोऽभिगन्तुं शीलं यस्येति *भवाटवीध्वान्तपथाभिगामी* । ताच्छील्ये णिनिः । *विषया* गन्धादयः । त एवापगा नदी तया प्लुतः प्रवोढ इति *विषयापगाप्लुतः* इन्द्रियासक्त इत्यर्थः । तादृशं तं *मनुष्यसङ्घं प्रबोधदीपप्रभया* ज्ञानप्रदीपप्रकाशेन । *मुनीश्वरः* दयानन्दः । 'स्वामीश्वराधिपति' (पा. ३।३।३९) इत्यादिना षष्ठी, कृद्योगी च षष्ठी समस्यते इति समासः *प्रकाशकस्तम्भ इव* जलीयपोतानां तमसि मार्गप्रदर्शनाय प्रकाशस्तम्भा निरवन्यन्त इति सर्वविदितमेव । तद्वद् उददीधरत् गन्तव्यं पन्थानं न्यदर्शयत् । ण्यन्ताद् धृञो धातोर्लुङि 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ्' (पा. ३।१।४८) इति चङ् । 'सन्वल्लघुनिचङ्परेऽनङ्लोपे' (पा. ७।४।९३) इत्यभ्यासस्येत्त्वम् ॥ ९ ॥

उस समय की हालत बड़ी ही दयनीय थी। मानव-समुदाय संसाररूपी घोर जंगल में अज्ञान से भरपूर समुदाय और पन्थों के रास्ते में ठोकरें खा रहा था। लोग विलासिता की अधोगामिनी नदी में गोते खा रहे थे। ऐसे समय में इस महामुनि ने वैदिक-ज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश से डूबते हुओं को वैसे ही बचा लिया जैसे समुद्र में डूबते हुए यात्रियों को प्रकाश-स्तम्भ बचा लेता है ॥९॥

अबोधगर्त्ते पतितानयं जनान्
सुबोधसोपानपरम्परां दिशन् ।

यतिर्दयार्द्रेण हृदा य आपदां
पथोऽनयन् मुक्तिसमृद्धिसत्पथम् ॥ १० ॥

अयं यतिः दयानन्दोब्रह्मचारी अबोधगर्त्तेऽविद्यावटे पतितान् जनान् दयार्द्रेण करुणाप्लुतेन हृदा चेतसा सुबोधसोपानपरम्परां ज्ञाननिःश्रेणी-श्रेणीम् दिशन् ज्ञापयन् आपदां विपत्तीनाम् पथः मार्गात्। मुक्तिसमृद्धिसत्पथं मुक्तिरेव समृद्धिः सम्पत्तिस्तस्या यः सन् शुभः पन्थाः। 'ऋक्पूरब्धूपथा-मानक्षे' इति अप्रत्ययः। तम् *अनयत्* प्रापयत्। नञ्धातोर्द्विकर्मकत्वादत्र पुनः कर्मत्वम् ॥ १० ॥

इस महान् संन्यासी ने दयालु हृदय से मतमतान्तरों की खाइयों में पड़े लोगों को सदुपदेश की सीढ़ियों द्वारा बाहर निकाला और दुःख मार्ग से हटा कर अभ्युदय और मोक्ष के महान् मार्ग पर डाला ॥ १० ॥

महोग्रतापत्रयतापितं जग-
ज्जगद्गुरुर्वेदमहार्णवोदरात् ।
निपीय बोधामृतमम्बुवर्षणै-
रहर्षयद्योऽम्बुधरो मनोहरः ॥ ११ ॥

यः सद्विद्याप्रदातृत्वाज् *जगद्गुरुर्दयानन्दो वेदमहार्णवोदराद् वेद-*महासागरमध्यात्। *बोधामृतं* ज्ञानपीयूषम्। *निपीय* 'समासे ऽनञ्पूर्वे-क्त्वोल्यप्' (पा. ७।१।३७) इति ल्यप्प्रत्ययः। *महोग्रतापत्रयतापितं* महच्च तदुग्रं च तापत्रयम्। 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (पा. ६।३।४६) इत्यात्वम्। 'भयङ्करं प्रतिभयं रौद्रं तूग्रम्' इत्यमरः। तादृशेन तापत्रयेणाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकक्लेशेन तापितम्। 'द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा' (पा. ५।२।४३) इति परिमाणेऽयच्। *जगत* जगत्स्थान् जनान्। तात्स्थ्योपाधिरत्र यथा मञ्चा आक्रोशन्ति। *मनोहरः* शान्ति-प्रदत्वाच्चेतोलोभनीयः। मनोहरपदस्य साभिप्रायत्वात् परिकरालङ्कारः। *अम्बुधरः* जलधर इव। इवपदस्याभावेऽप्यत्र प्रतीयमानोपमा। *अम्बुवर्षणैः* जलवर्षणैः, द्वितीयपक्षे ज्ञानवर्षणैः। *अहर्षयद्* अमोदयत्। तापतापित-

शब्दयोर्जगज्जगद्गुरुशब्दयोश्च यमकालङ्कारः। तथा च काव्यप्रकाशे 'अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः, यमकम्।' वर्षणैरहर्षयदित्यत्र च्छेकानुप्रासः। 'छेकोऽव्यञ्जनसङ्घस्य सकृत्साम्यमनेकधा' इति विश्वनाथः। एतेषां श्लेषरूपकयोश्च परस्परनिरपेक्षत्वात् संसृष्टिः ॥ ११ ॥

जैसे मनोहर मेघमण्डल महासागर में से जल लेकर गरमी से तपे भूतल को अपनी वर्षा से शान्त कर देता है, वैसे ही जगद्गुरू दयानन्द ने वेदों से उपदेशामृत लेकर तीन प्रकार के-आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक-उग्र सन्तापों से सन्तप्त जगत् को अपनी मधुर वाणी-वर्षा से आनन्दित किया ॥११॥

असाध्यरोगाभिभवेन पीडितं
कलेवरं लोकसमाजरूपकम्।
विलोक्य तस्मै व्यतरन्महौषधं
भिषग्वरो वीर्यविवर्धनव्रतम् ॥ १२ ॥

असाध्यैर्दुश्चिकित्स्यै रोगै र्गदैरभिभवेन पराभवहेतुना। 'हेतौ' (पा. २।३।२३) इति तृतीया। पीडितं व्याकुलितं। *लोकसमाजरूपकं* लोकानां जनानां समाजो गणः 'समुदोरजः पशुषु' (पा. ३।३।६९) इति पशुष्वेवाप् पशुभिन्ने तु घञ्। स एव रूपं यस्येति 'शेषाद्विभाषे'ति कप् समासान्तः, तत् *कलेवरं* शरीरं *विलोक्य यो भिषग्वरः* कुशलवैद्यो दयानन्दस्तस्मै लोकसमाजाय। *वीर्यविवर्धनं* वीर्यं विवर्धतेऽनेनेति करणे ल्युट्। तादृशं व्रतं ब्रह्मचर्यव्रताभिधम्। तदेव *महौषधं* सर्वरोगमूलोन्मूलकं भैषज्यं। *व्यतरत्* प्रादात् ॥ १२ ॥

वैदिक आचार-विचारों के अनुकूल भारतीय जनता अपना जीवन नहीं बिता रही थी, इसीलिये उसके कलेवर को अनेक असाध्य रोगों ने घेर लिया था, अतः धन्वन्तरि दयानन्द ने समाज को ब्रह्मचर्य की अद्भुत शक्तिशालिनी बूटि प्रदान की ॥ १२ ॥

पुरातनीं भारतभाग्यसम्पदं
गता महोत्कर्षगिरीन्द्रमस्तकम्।

विनिर्दिशन् वैदिककालशालिनीं
जनान् य इत्थं समबोधयन् मुनिः ॥ १३ ॥

महोत्कर्षगिरीन्द्रमस्तकं महान् उत्कर्षश्चरमसीमा, 'उत्कर्षो ऽतिशये' इत्यमरः। तस्य गिरीन्द्रः पर्वतराजः। तस्य मस्तकं शिखरप्रदेशम्। *गतां* प्राप्तां। *पुरातनीं* पूर्वतनीम्। 'सायंचिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्ट्युलौ तुट् च' (पा. ४।३।२३) इति ट्युट् ट्युल् वा प्रत्ययः। *वैदिककालशालिनीं* वैदिकयुगे प्राप्तप्रचाराम्। वैदिककाले शालते 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (पा. ३।२।७८) इति णिनिः। शालोधातुत्वं 'मिलिक्लिक्षिपिप्रभृतीनां धातुत्वं, धातुगणस्यासमाप्तेः' इति काव्यालङ्कारसूत्रेण ज्ञेयम्। *भारतभाग्यसम्पदां* भारतवैभवम्। सम्पदाशब्दः, 'आपं चैव हलान्तानां यथा वाचा निशा दिशा' इतीष्ट्याऽऽबन्तः। *विनिर्दिशन्* पुर उपस्थापयान्। *यो मुनिर्दयानन्दः*। *जनान्* भारतीयान्। *इत्थं* निम्नोक्तदिशा। 'इदमस्थमुः' (पा. ५।३।२४) इतिथमुः। *समबोधयद्* व्यज्ञापयत् ॥ १३ ॥

वैदिक युग के प्राचीन भारत की भाग्यलक्ष्मी उन्नति के हिमाचल शिखर पर पहुँच चुकी थी, उसे मुनिवर दयानन्द ने इस प्रकार समझाया ॥ १३ ॥

दयानन्दमुखेन प्राचीनभारतभाग्योदयं वर्णयति कविरा-एकचत्वारिंशश्लोकान्तम्—

सुभोगमोक्षोभयसौख्ययोगिनां
समग्रसंसारहितैषिणां सताम्।
पदे पदे ते गृहमेधिनामभुः
सुवर्णवर्णीन्द्रविराजिताश्रमाः ॥ १४ ॥

सुभोगमोक्षोभयसौख्यभोगिनां सुभोगस्य सांसारिकवैभवस्य मोक्षस्य च उभयसौख्यं युञ्जते तेषाम्। *समग्रसंसारहितैषिणां* सकलसंसारस्य हितमिच्छूनाम्। *सतां* मर्यादानुवर्त्तिनाम्। *गृहमेधिनां* कृतदाराणाम्। गृहं पत्नीं मेधन्ते सङ्गच्छन्ते इति गृहमेधिनः, 'न गृहं गृहमित्याहु र्गृहिणी

गृहमुच्यते'। 'पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत्' इत्यादि-विधि दारकरणे। *सुवर्ण-वर्णीन्द्रविराजिताश्रमाः* प्रशस्तं वर्णं येषां ते वर्णिनः तेषामिन्द्रा ब्रह्मचारि-वर्याः। 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' (पा. ५।२।१३४)। सुन्दरब्रह्मचारिभिः विराजिता अलंकृता आश्रमा गुरुकुलानि। पदे पदे अविरलतया। वीप्सायां द्वित्वम्। *अभुः* व्यलसन्। 'भा दीप्तौ' इति धातोर्लङि 'लङः शाकटायनस्यैव' (पा. ३।४।१११) इति झेर्जुस्॥ १४॥

प्राचीन आर्यावर्त में स्थान-स्थान पर श्रेष्ठ गृहस्थ लोग अभ्युदय और निःश्रेयस (भोग और मोक्ष) का आनन्द लूटा करते थे। वे निरन्तर संसार का कल्याण करने में लगे रहते थे। इसीलिये गृहस्थों के घरों को तेजस्वी ब्रह्मचारी आलोकित करते थे॥ १४॥

पवित्रमन्त्रध्वनिमञ्जुलाङ्गणे
गृहे गृहे भारतवर्षवासिनाम्।
ललास यज्ञानलधूममालया
निरभ्रमप्यम्बरमम्बुदैर्युतम्॥ १५॥

भारतवर्षवासिनां जनानाम्। *पवित्रमन्त्रध्वनिमञ्जुलाङ्गणे* पवित्रमन्त्राणां ध्वनिना मञ्जुलं रम्यम् आङ्गणं यस्मिंस्तथाभूते गृहे गृहे प्रतिगृहे। 'नित्यवीप्सयोरिति' (पा. ८।१।४) वीप्सायां द्वित्वम्, 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोती'ति विधेः *यज्ञानलस्य* यागाग्नेः *धूममालया* धूमलेखया। *निरभ्रमपि* मेघहीनमपि, 'अभ्रं मेघे' इति मेदिनी। *अम्बरं* गगनम्। *अम्बुदैः* मेघैः। अम्बु ददतीति अम्बुदाः। 'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा. ३।२।३) इति कप्रत्ययः। *तैर्युतमाच्छन्नमिव*। *ललास* शुशुभे। अत्र प्रतीयमानोत्प्रेक्षा गूढोत्प्रेक्षा वा। तल्लक्षणंच चन्द्रालोके यथा 'उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादि-र्निह्नुतिं विना। इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षां प्रचक्षते'॥ १५॥

प्रत्येक भारतवासी के गृहाङ्गण में पवित्र वेदमन्त्रों की मञ्जुलध्वनि सुनाई देती थी और अग्निहोत्र के धूएं से बिना बादलों का आकाश भी बादलों से घिरा सा सुशोभित लगता था॥ १५॥

अशेषविद्याऽध्ययनाय भारते
स्थले स्थले योगिगुरोः कुलं बभौ ।
पृथक् पृथक् बालकबालिकागणै-
र्व्रतार्थिभिर्ब्रह्ममनोभिरन्वितम् ॥ १६ ॥

भारते देशे *अशेषविद्याध्ययनाय* अखिलविद्याधिगमाय *स्थले स्थले* स्थाने स्थाने, वीप्सायां द्वित्वम्। *व्रतार्थिभिः* अहिंसाब्रह्मचर्यादिकमनुतिष्ठासुभिः। 'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना सार्वभौमा महाव्रतम्' इति योगे पतञ्जलिः। तादृशस्य व्रतस्यार्थः प्रयोजनम् इति व्रतार्थः। स एषामस्तीति व्रतार्थिनः। 'तदन्ताच्च वक्तव्यम्' इतीनिः। *ब्रह्मणि मनो* एषां तैर्वेदतपोरतैः। 'ब्रह्मतत्त्वतपोवेदे न द्वयो पुंसि वेधसि' इति मेदिनी। *बालकबालिकागणैः* कन्याकुमारवृन्दैः अत्र 'पुमान् स्त्रिया' (पा. १।२।६७) इत्येकशेषो न 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्मादिदाप्यसुपोः' इतीत्त्वस्य तल्लक्षणस्यैव विशेषस्याभावात्। *पृथक् पृथक्* भिन्नभिन्नस्थानेषु। बालकानां पृथग् गुरुकुलं बालिकानां च पृथक्, न तु तेषां सह शिक्षणमासीत्। *अन्वितं* सनाथितम्। *योगिगुरोः कुलं* जातावेकवचनम्। ब्रह्मपराणां गुरूणां कुलानि *बभौ* रेजिरे इत्यर्थः। भाधातोर्लिटि 'आत औ ण लः' (पा. ७।१।३४) इत्यौत्वम् ॥ १६ ॥

(प्राचीन काल में) भारत में विविध विद्याओं को पढ़ाने के लिये संयमी गुरुओं के स्थान स्थान पर बालक और बालिकाओं के पृथक् पृथक् गुरुकुल थे, जिन में ब्रह्मचर्य व्रत धारण कराया जाता था और प्रकृति से लेकर ईश्वर तक का ज्ञान कराया जाता था ॥ १६ ॥

वनीश्वराणां फलकन्दभोजिनां
वने वने संयमिनां तपोवनम् ।
प्रशान्तवैरं मृगराजदन्तिभिः
निषेवितं प्रीतियुतैर्मिथोमृगैः ॥ १७ ॥

वने वने *प्रतिवनम्*। वीप्सायां द्वित्वम्। वनमेषामस्तीति *वनिनः* 'अत इनिठनौ' (पा. ५।२।११५) इति संसर्गे इनिः। तेषामीश्वराणां मूर्द्धाभिषिक्तानां वानप्रस्थानामित्यर्थः। किंविधानां तेषामित्याह फलकन्दभोजिनां *संयमिनां* प्रयतात्मनाम्। अहिंसाबलात् *प्रशान्तवैरं* निर्गतशात्रवम्। 'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग' इति पतञ्जलिप्रामाण्यम्। *तपोवनमाश्रमपदम्*। *प्रीतियुतैः* स्नेहसिक्तमानसैः। *मृगराजाः* सिंहाः। 'राजाहसखिभ्यष्टच्' (पा. ५।४।९१) इति समासान्तष्टच्। *दन्तिनः* करिणः, 'दन्ती दन्तावलोहस्ती' इत्यमरः। तैर्मृगैश्च *मिथः* परस्परं साङ्गत्येन *निषेवितमासीत्*। प्रसाद-गुणस्यापूर्वावतार इवात्र भाति। तद्गुणालङ्कारोऽत्र। तथा च काव्यप्रकाशे तल्लक्षणं "स्वमुत्सृज्यगुणं योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत्। वस्तु तद्गुणतामेति भाष्यते स तु तद्गुणः" ॥ १७ ॥

वन वन में जितेन्द्रिय, श्रेष्ठ वानप्रस्थियों के आश्रम थे। वे लोग कन्द-मूल और फलों का आहार करते थे। उन तपोवनों में सिंह, हाथी, मृग आदि पशुगण अपने अपने वैर त्याग कर प्रेम से रहते थे ॥ १७ ॥

समग्रवेदागममर्मवेदिनां
विनिर्मलज्ञानसुधाप्रवर्षिणाम्।
गतैषणानामृषिवर्ययोगिनां
पुरे पुरेऽभूदुपदेशवर्षणम् ॥ १८ ॥

समग्रवेदागममर्मवेदिनां निखिलानां वेदविद्यानां रहस्यविदाम्। *विनिर्मलज्ञानसुधाया* पवित्रविद्यामृतस्य *प्रवर्षिणां* धारासारपातिनाम्। *गतैषणानां* पुत्रैषणालोकैषणावित्तैषणारहितानां। तथा चाह याज्ञवल्क्यः शतपथे—'पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति'। *ऋषिवर्ययोगिनाम्* उपदेशवर्षणं सन्मार्गप्रदर्शकप्रवचनप्रदानम्। पुरे पुरे नगरे नगरे ऽभूत्। वीप्सायां द्वित्वम्। तदा जना ऋषीणां मुनीनां योगिनां चोपदेशैरात्मानमपावयन् ॥ १८ ॥

नगर नगर में सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों के मर्म जानने वाले, तीनों एषणाओं (वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा) को जीतने वाले, योगनिष्ठ ऋषिगण निर्मल ज्ञानामृत की धारा बहाते थे ॥ १८ ॥

विशुद्धवेदान्तरहस्यवित्तमाः
सभासु शास्त्रार्थविधानपण्डिताः ।
निरञ्जनब्रह्मविलीनमानसाः
पुरा बभूवुः सुलभादियोषितः ॥ १९ ॥

विशुद्धं यथातथं वेदान्तस्य रहस्यमतिशयेन विदन्ति ते विशुद्धवेदान्त-रहस्यवित्तमाः । विद्धातोः क्विबन्तादतिशयेन तमप् । *सभासु* परिषत्सु *शास्त्रार्थस्य* वाग्युद्धस्य *विधाने* करणे *पण्डिता* दक्षाः । सप्तमीशौण्डैः (पा. २।१।३९) इत्यत्र सप्तमीति योगविभागेन समासः । निरञ्जने निर्लेपे ब्रह्मणि निलीनं मग्नं मानसं मनो यासां तां *निरञ्जनब्रह्मविलीनमानसाः सुलभादयो योषितो* ललना *पुराऽत्र* भारते *बभूवुः* आसन् । भुवोलिटि प्रथमपुरुषबहुवचनम् ॥ १९ ॥

उस समय सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, सूर्या आदि देवियाँ पवित्र वेदों के रहस्यों को समझती थीं । परिषदों में धुरन्धर पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ किया करती थीं । उनका मानसरूपी हंस निरञ्जन ब्रह्म में निमग्न रहता था ॥ १९ ॥

गृहश्रियः श्रीपतिदेवभक्तयः
सदा प्रजामङ्गलमूर्त्तयः स्त्रियः ।
स्वराष्ट्रधर्मोदयसिद्धिमातरो
दयार्द्रचित्ता गृहनीतिचन्द्रिकाः ॥ २० ॥

गृहाणां श्रियो लक्ष्म्यः । *श्रीपतिदेवे* पतिरेवदेवस्तिस्मन् *भक्तिः* श्रद्धा सेवा वा यासां ताः । भजसेवायामिति धातोः क्तिन् । *सदा* सर्वस्मिन् काले । 'सर्वैकान्यकिंयत्तदो कालेदा' (पा. ५।३।१५) इति दा प्रत्ययः । 'सर्वस्य सोऽन्यतरस्यांदि' (पा. ५।३।६) इति सर्वशब्दस्य सादेशः । *प्रजामङ्गल-मूर्त्तयः* स्वसन्तानकृते सौम्या कल्याणकामुकाश्च । प्रजायन्त इति प्रजा सन्ततिः, 'प्रजा स्यात् सन्ततौ' इत्यमरः । तस्मै मङ्गला मूर्तिर्यासाम् ।

अत्र मङ्गलापदेन मङ्गलमयीत्यभिधीयते गुणगुणिनोस्तादात्म्यसम्बन्धात्। *स्वराष्ट्रस्य धर्मस्य* च उदयसिद्धौ उन्नतिप्राप्तौ *मातरो* जनन्य इव दत्तहृदयाः। *दयार्द्रचित्ताः* करुणाक्लिन्नमानसाः। *गृहनीतिचन्द्रिका* गृहनीतौ गार्हस्थ्य-कर्मणि चन्द्रिकेवोज्जलाः स्त्रियोऽत्र भारते बभूवुः। अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् इति स्त्रीणां गृहोन्नतिकृते स्मार्तो धर्मोऽप्यत्रानु-विधेयः। श्री श्रियोरनुप्रासालङ्कारः॥ २०॥

स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी थीं, अपने पतियों पर देवतुल्य भक्ति रखती थीं, प्रजा के लिये साक्षात् मंगलकारिणी देवी थीं। अपने राष्ट्र और धर्म के अभ्युदय के लिये प्रत्यक्ष मूर्तिमती सिद्धि थीं। उनका हृदय कोमल था। वे चन्द्रमा के समान गृहनीति की प्रकाशिका थी॥ २०॥

कृपादरिद्रोग्रकृपाणपाणयः
प्रचण्डकोदण्डविमुक्त मार्गणाः।
अरातिदन्तीन्द्रमृगाधिपाङ्गना
रणे विरेजू रणचण्डपण्डिताः॥ २१॥

कृपया दरिद्रा निष्कृपा इत्यर्थः। तादृशा *उग्रास्तीक्ष्णाश्च कृपाणा* असय *पाणिषु* यासाम्। 'प्रहरणार्थेभ्यो निष्ठासप्तम्यौ परे भवत इति वक्तव्यम्' इति वार्तिकेन पाणिशब्दस्य परनिपातः। *प्रचण्डानि* प्रतापीनि च तानि *कोदण्डानि* कार्मुकानि। 'प्रचण्डो प्रतापिनि' इति मेदिनी, 'कोदण्ड कार्मुके' इति हेमचन्द्रः। तेभ्यः कोदण्डेभ्यो *विमुक्ताः* प्रासिता *मार्गणा* बाणा याभिः। 'कलम्बमार्गणशराः' इत्यमरः। *रणचण्डपण्डिता* रणे चन्द्रा अत्यन्त-कोपनाः पण्डिता विवेकवत्यश्च, 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः। पण्डा विवेकशालिनी बुद्धिः, साऽस्य सञ्जाता 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' (पा. ५।२।३३) इतीतच् प्रत्ययः। स्त्रियां टापि पण्डिता। रणे युद्धे *विरजुः* शुशुभिरे। 'फणां च सप्तानाम्' (पा. ६।४।१२५) इति लिब्त्वेत्वा-भ्यासलोपौ। 'रोरि' (पा. ६।३।१४) इति रेफलोपे 'ढ्रलोपेपूर्वस्य दीर्घो-ऽणः' (पा. ६।३।१११) इत्युकारस्य दीर्घः। नात्राविमृष्टविधेयांशदोष आशङ्क्यः, तत्पुरुषसमासस्योत्तरपदार्थप्रधानत्वाद् अङ्गनाशब्दो न

स्वप्राधान्यं जहाति। वृत्तमदो यमकानुप्रासावाप्लवाते पदे पदे। तयोश्च सापेक्षत्वात् सङ्करालङ्कारोऽपि। ओजोऽत्र गुणो गरिमाणमाधत्ते वीरश्च रसः स्यन्दते, तल्लक्षणं च साहित्यदर्पणे यथा—ओजश्चित्तस्य विस्तार-रूपं दीप्तत्वमुच्यते। वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु। विकटबन्ध-त्वाद् गौडी रीतिरपि वीररसानुकूलैव अन्यत्रबहुत्र प्रसादगुणो वैदर्भीरीति-रितिविवेकः॥ २१॥

भारत की क्षत्राणियाँ रणाङ्गण में रणचण्डी के रूप में चमका करती थीं। उनके हाथों में सर्पिणी के समान लपलपाती तलवारें रहती थीं और कन्धों पर धनुष और बाण लटका करते थे, जिन्हें वे उचित अवसरों पर छोड़ा करती थीं और शत्रुरूपी हाथियों पर सिंहनी के समान टूट पडती थीं॥ २१॥

स्वराज्यसञ्चालनकर्मशिक्षिता
नरेन्द्रकन्या रणयज्ञदीक्षिताः।
अनेकविद्यासुकलाभिमण्डिता
अमण्डयन्नार्यमहीं महीयसीम्॥ २२॥

स्वराज्यस्य सञ्चालनकर्मणि वहनविधौ *शिक्षिताः* कृतविद्याः। रण-यज्ञदीक्षिता रण एव यज्ञस्तस्मिन् दीक्षिता अधिकृताः। *अनेकाभिर्विद्याभिः सुकलाभिर्मनोरमशिल्पकार्यैश्च अभिमण्डिता* विभूषिताः। 'कलाशिल्पे-कालभेदे' इत्यमरः। *नरेन्द्रकन्या* राजदुहितरः। *महीयसीं* महत्त्वशालिनी-मिमा*मार्यमहीं* भारतभुवममण्डयन् समभूषयन्। शिक्षिता दीक्षिता इत्यत्र पादान्त्यानुप्रासः। 'महीं महीयसीमित्यत्र यमकम्। २२॥

भारतवर्ष की राजकन्यायें चतुराई से अपना राज्य संचालन कर सकती थीं। समय पड़ने पर बड़े बड़े रणयज्ञ भी रचा करती थीं। वे अनेक विद्या और कलाओं को जानती थीं, जिससे भारतमाता का मुखचन्द्र चमकता था॥ २२॥

रवीन्द्रवंशोद्भववीरबालकाः
स्ववीर्यविस्मापितदेवदानवाः।

लवाभिमन्युप्रमुखा बलीश्वरा
यशोमृगाङ्कैर्व्यधुरुज्ज्वलामिलाम् ॥ २३ ॥

रविश्चेन्दुश्च तौ रवीन्दू तयोर्वंशौऽन्वयौ। वंशशब्द उभाभ्यां सम्बध्यते। सूर्यवंशश्चन्दुवंशश्चेत्यर्थः। तयोर्वंशयोरुद्भव उत्पत्तिर्येषां ते *वीराबालका* उत्पूर्वकभुवः 'ऋदोरप्' (पा. ३।३।५७) इति भावेऽप् प्रत्ययः। 'जनिरुत्पत्तिरुद्भव' इत्यमरः। *स्ववीर्यैं* निजबलम् प्रभावो वा, 'वीर्यं बले प्रभावे च' इत्यमरः। तेन *विस्मायिताश्च*कितीकृता देवा दानवाश्चयैः। हेतुभयाभावादत्रात्त्वं नात एव च पुगभावः। *बलीश्वरा* बलिनः। *लवाभिमन्युप्रमुखा यशोमृगाङ्कैः* स्वकीर्तिकौमुद्या। *इमामिलां* भुवम् *उज्ज्वलां* प्रसृतदिग् दिगन्तरालयशोधवलां व्यधुरकार्षुः विपूर्वकधाञो लुङि, 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' (पा. २।४।७७) इति सिचोलुक्। आतः (पा. ३।४।११०) इति झेर्जुस् ॥ २३ ॥

सूर्यवंश और चन्द्रवंश में लव और अभिमन्यु जैसे बलशाली वीर बालक हुआ करते थे, जिनके अमित शौर्य्य को देखकर देव और दानव भी दाँतों तले अङ्गुली दबाते थे। इन बालकों के सुन्दर चरित्र-चन्द्र की छटा भूमण्डल में छिटक रही थी ॥ २३ ॥

विशिष्टविद्याविनयादिसद्गुणै-
रलङ्कृतान् स्नातकविप्रवर्णिनः।
अपूपुजन् संसदि नम्रमौलयो
महाप्रतापाः पृथीश्वरा हृदा ॥ २४ ॥

विशिष्टा असाधारणा *विद्याविनयादयो* ये *सद्गुणाः* शुभगुणास्तै*रलङ्कृतान्* विभूषितान्। *स्नातकविप्रवर्णिनः* अधीतवेदान्, *ब्रह्माणान्* ब्रह्मचारिणश्च। 'स्नाताद्वेदाध्ययने' इति वार्तिकेन कन् प्रत्ययः। 'विप्रश्च ब्राह्मणोऽसौ षट्कर्मा यागादिभिर्वृतः' इत्यमरः। *तान्* *महाप्रतापा पृथ्वीश्वरा* राजाना *नम्रमौलयो* नतमस्तकाः सन्तः। *संसदि* राजपरिषदि। *हृदा अपूपूजन्* सममानयन्। पूज् धातोण्यन्ताल्लुङि 'णौ चङि उपधाया

ह्रस्व' (पा. ७।४।१) इति उपधाया उकारस्य ह्रस्वः। 'दीर्घो लघोः' (वा. ७।४।९४) ऽत्यभ्यासोकरस्य दीर्घः।

उस समय के स्नातक श्रेष्ठ विद्या, विनय आदि सद्गुणों से अलंकृत थे। महाप्रतापी नृपगण उन स्नातकों का भक्ति से शिर झुकाकर सभाओं में सत्कार करते थे ॥ २४ ॥

दयामयान्तः करणास्तपोधनाः
शमान्वितास्सात्त्विकवृत्तयोऽमलाः।
अमीक्षमादर्शवरा इवाबभु-
र्द्विजेश्वरा ब्रह्मसुवर्चसोज्ज्वलाः ॥ २५ ॥

दयामयान्तःकरणाः कृपान्वितचेतसः। *तपोधनास्तप* एव धनं येषाम्। *शमान्विताः* शान्तियुताः। सत्त्वेन पुण्येन सम्पादिता सात्त्विकी। सात्त्विकी वृत्तिर्जीवनप्रवृत्तिर्येषां ते *सात्त्विकवृत्तयः*, 'वृत्तिर्वर्तनजीवने' इत्यमरः। *अमलाः* शुद्धमनस्काः। *ब्रह्मसुवर्चसा* दीव्येन तेजसा। 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चस' इति तु समासान्तोऽच् समासान्तेसु तदन्तविधिप्रतिषेधात्। *उज्ज्वला* दीप्ता *अमी द्विजेश्वरा* ब्राह्मणाः। *क्षमादर्शवरा* शान्त्याः साक्षान्मूर्तय इव *आबभुः* व्यराजन्त। माधातोर्लिटि प्रयोगः।

ब्राह्मणों का धन तप ही था, उनका हृदय दया से भरा रहता था। शम, दम, तितिक्षा आदि सात्विक गुणों से उनकी वृत्तियाँ निर्मल थीं। क्षमा के तो मानो वे आदर्श ही थे। उनके मुखमण्डल पर ब्रह्मवर्चस तेज की झलक थी ॥ २५ ॥

प्रजामनोञ्जनतत्परानृपाः
प्रजा इव स्वाः प्रकृतीर्नयेन ये।
अपालयन् पावनधर्ममूर्त्तयो
जितेन्द्रियाः सञ्चितशीलसम्पदः ॥ २६ ॥

प्रजायन्त इति *प्रजा* जनाः। उपसर्गे च सञ्ज्ञायाम् (पा. ३।२।९९) इति तप्रत्ययः तासां *मनोरञ्जनेऽभीष्टेच्छापूरककर्मणि तत्पराः* संलग्नाः, प्रजाहिताय प्रयतमाना इत्यर्थः। अत्र मनसः सकारस्य 'ससजुषोरुः'

(पा. ८।२।६६) इति रुत्वे सति 'हशि च' (६।१।११३) इत्यस्य 'रो रि' (८।३।११४) इत्यस्य च समकालप्राप्तिः। विप्रतिषेधे परं कार्यम् (पा. १।४।२) इति 'रो रि' प्रवर्त्तते। रेफलोपस्य पूर्वमसिद्धत्वात् पुनः 'हशि चे'त्युत्वं भवति। धर्मस्यातिशयेन धारणात् *पावनधर्ममूर्त्तयः*। *जितेन्द्रियाः सच्चितशीलसम्पदः* प्रशस्तशीला उपार्जितवैभवाश्च नृपाः। *प्रकृतीः* विशः। *स्वाप्रजा* इव स्वसन्ततीरिव। नयेन न्यायेन। एरच् (पा. ३।३।५६) इति भावेऽच्। *अपालयन्नरक्षन्नपुष्णँश्च*। 'क्षत्रियस्य च रक्षणमि'ति स्मृतिमन्वगुः। कालिदासोऽप्याह 'स पिता पितरस्तासां। केवलं जन्महेतवः' रघु. १।२४ ॥ २६ ॥

प्राचीन भारत के सम्राट् जितेन्द्रिय होते थे। वे आचार, विचार, शील आदि गुणों के धनी थे। वे मानों पवित्र धर्म की मूर्ति ही थे। धर्मानुसार प्रजा पर पुत्र तुल्य प्रेम दृष्टि रखते थे, इसलिये उनका पालन करते हुये उनके मनोरञ्जन का भी ख्याल रखते थे ॥ २६ ॥

सुशिल्पवाणिज्यविशालकर्मणा
दिगन्तसम्पादितभूरिसम्पदा।
परोपकारव्ययितार्थराशिना
व्यभूषि वृन्देन विशां वसुन्धरा ॥ २७ ॥

सुशिल्पं हस्तकला *वाणिज्यं* पदार्थक्रयविक्रयं च। तादृशं देशविदेशेषु प्रसारं प्राप्तं *विशालं* व्यापारसम्बन्धि *कर्म* यस्य तेन *दिगन्तसम्पादितभूरिसम्पदा* सर्वदिग्भ्यो देशेभ्यो वा समुपार्जितविपुलधनराशिना। *परोपकारे* सर्वप्राणिभ्यः सुखप्रदकार्ये *व्ययिता* नियोजितार्थराशिर्धनसंग्रहो येन तादृशेन *विशां* वणिजां *वृन्देनेयं वसुन्धरा* भारतभूर्व्यभूषि। तथा च स्मृतिः 'वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च' ॥ २७ ॥

आर्यभूति ऐसे वैश्यवर्ग से विभूषित थी जो सुन्दर गृह, उद्योग, बड़े-बड़े कारखाने और विशाल व्यापार द्वारा देश-देशान्तरों से धनराशि खींच लाते थे, और उसको परोपकार कार्य में खर्च भी कर देते थे ॥ २७ ॥

वरेण्यवर्णत्रययोग्यसेवया
पवित्रयन्तो निजमानवं वपुः ।
पुरार्यसंस्कारमणिप्रभारते
रराजिरे शूद्रवराः स्वभारते ॥ २८ ॥

वरेण्यं वरीतुं योग्यमुत्कृष्टं *वर्णत्रयं* ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यम् । तस्य *योग्यसेवया* जीवनोपयोगिवस्तुनिर्माणकर्मणा । *निजं मानवं वपुः* शरीरम्, 'गात्रं वपुः संहननम्' इत्यमरः । *पवित्रयन्तो* वर्णत्रयसेवयोपकारेण आत्मानं धन्यं मन्यमानाः । अत्र चाह मनुः–'एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समाशित । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥' *पुरा* प्राचीनकाले । *आर्यसंस्काररूपस्य* गर्भाधानादिसंस्कारस्य *मणेर्मणिकल्पस्य प्रभायां* प्रकाशे *रते* अनुरक्ते । वैदिकधर्मविहितषोडशसंस्कारानुगामिनि भारते इत्यर्थः । तदा भारते षोडशसंस्काराणां सम्यक् पालनं भवति स्म । तादृशे *स्वभारते* पूर्वोक्ता *शूद्रवरा रराजिरे* । 'फणां च सप्तानां' (पा. ६।४ १२५) इति वैकल्पिक एत्वाभ्यासलोपः। प्रभारते भारते इत्यनुप्रासालङ्कारः ॥२८॥

अहा ! प्राचीन भारत आर्यसंस्कारों की दिव्यप्रभा से आलोकित हो रहा था । उस समय के शूद्र भी तीनों श्रेष्ठ वर्णों की योग्य सेवा से मानव जीवन को पवित्र करते हुए धन्य धन्य हो रहे थे ॥ २८ ॥

चातुर्वर्ण्यं निर्वर्ण्य त्यागशीलान् नृपान् वर्णयति—

स्वसत्यचर्याव्रतमङ्गलावने
नृपा हरिश्चन्द्रनिभा इहावनौ ।
विशालमैश्वर्यमपि प्रदाय ते
प्रहर्षतः कष्टमपि प्रसेहिरे ॥ २९ ॥

स्वेति । *स्वसत्यचर्याव्रतस्य* सत्यवादिताप्रतिज्ञाया । *मङ्गलावने* शुभसंरक्षणकृते । स्वव्रतस्य रक्षणं मङ्गलं भवति । *हरिश्चन्द्रनिभाः* हरिश्चन्द्रसदृशाः, 'निभसंकाशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः' इत्यमरः । *नृपाः* ।

नॄन् पान्तीति 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः । इहात्र अवनौ भारतभुवि । विशालमैश्वर्यं राज्यमपि विश्वामित्रादिभ्यः प्रदाय प्रहर्षतः प्रसन्नतया । 'इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते' (पा. ५।३।१४) इति तृतीयाया तसिल् । वनगमनादिकं कष्टमपि प्रसेहिरे सोढवन्तः । 'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' (पा. ६।४।१२०) इत्येत्वाभ्यासलोपौ । 'मङ्गलावने इहावनौ' इति पादान्त्यानुप्रासः ॥ २९ ॥

अपने सच्चे व्रत का पालन करने के लिये हँसते-हँसते विशाल साम्राज्य को भी त्याग करके, प्रसन्नतापूर्वक कष्टों को सहने वाले राजा हरिश्चन्द्र भी तो इसी भारत भूमि पर पैदा हुये थे ॥ २९ ॥

न केवलं राज्यमेवापितु जीवनमपि सत्याय हुतवन्त इत्याह—

परोपकारप्रवणाः प्रजेश्वराः
प्रजाहितार्थं वसुसौख्यसुन्दरान् ।
मनोज्ञभोगान् रमणीविलासजान्
स्वजीवनञ्चापि तृणाय मेनिरे ॥ ३० ॥

परेति । परेषामुपकारे प्रवणास्तत्पराः प्रजानामीश्वरा अधिपा प्रजाहितार्थं । अनुप्रास । प्रजाकल्याणाय । 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' (पा. २।१।३५) इति समासः । वसुनो धनस्य सौख्येन सुन्दरान् आकर्षकान् । सम्पत्तिसौख्यहेतोरधिकमनोरमान् इत्यर्थः, 'रिक्थमृक्थं धनं वसु' इत्यमरः । सुखमेव सौख्यं स्वार्थेष्यञ् प्रत्ययः । रमण्या विलासेभ्यः प्रेमगर्भितसौन्दर्यप्रकाशनाज् जातम् । 'पञ्चम्यामजातौ' इति ड प्रत्ययः । मनोज्ञान् मनोहरानपि भोगान् । 'भोगः सुखे' इत्यमरः । न केवलं भौतिकसुखमेवापितु स्वजीवनमपि तृणाय मेनिरे तुच्छीकृतवन्तः । 'मन्यकर्मण्यनादरविभाषाऽप्राणिषु' (पा. २।३।१७) इति चतुर्थी । प्रजाहिताय लौकिकसुखजातं स्वजीवनं च प्रति मन्दादरा अभूवन्नित्यर्थः ॥ ३० ॥

अपने देश में प्रजापालक नृपतिगण बड़े परोपकारी हुआ करते थे । वे प्रजाहित के लिये ऐश्वर्य, सुख, सुन्दर भोग विलास, तथा स्त्रीसुख को भी त्याग देते थे । और अधिक क्या ? वे अपने जीवन की भी आहुति दे देते थे ॥ ३० ॥

सर्वक्षात्रनिकषं परशुराममुपोद्बलकयति—

दिनेन्द्रतेजा भृगुनन्दनो मुनि-
र्महीं महिम्ना परशोर्बलेन यः ।
अनेकवारं विदधे विराजकां
समग्रमायुर्व्रतिराज एव सः ॥ ३१ ॥

दिनेति । दिनेन्द्रस्य सूर्यस्य तेज इव तेजो यस्य स *दिनेन्द्रतेजाः* । उत्तरपदलोपिबहुव्रीहिः । *सः भृगुनन्दनो* भृगुपुत्रः 'नन्दनो हर्षके सुते' इति मेदिनी । विवेकित्वान्मुनिः *परशुरामः समग्रमायुर्जीवनान्तं व्रतिराजो* ब्रह्मचारी *एवासीत्* । कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (पा. २।३।५) इति द्वितीया । मरणान्तं नैष्ठिकीं वृत्तिमेवातिष्ठमानश्च स *परशोः शस्त्रस्य बलेन महिम्ना* स्वसामर्थ्येन च । *महीं* भुवम् । *अनेकवारं विराजकां* राजविहीनां विगता राजानो यस्या इति बहुव्रीहौ समासन्तः कप् प्रत्ययः 'न कपि' (पा. ७।१४।१४) इतीत्त्वनिषेधः । *विदधे* चकार ॥ ३१ ॥

सूर्य के समान तेजस्वी, भृगु के पुत्र परशुराम आजीवन कठोर ब्रह्मचारी रहे थे । इन्होंने अपने अतुल तेज से केवल कुठार से ही सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को अनेक बार निर्वीर्य सा कर दिया था ॥ ३१ ॥

हनुमतो नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं विवृणोति—

प्रभञ्जनप्राणसमाञ्जनासुतो
जगत्त्रयख्यातचरित्रविक्रमः ।
रघूत्तमादर्शसुमस्तपुङ्गवो
रराज धीमान् हनुमान् व्रतीश्वरः ॥ ३२ ॥

प्रभञ्जनेति । *प्रभञ्जनस्य* पवनस्य । पवननामा हनुमत्पिता । *प्राणसमा* प्रिया याऽञ्जना । हनुमतो जननीनामैतत् । तस्याःसुतो हनुमान इत्यर्थः । *जगत्त्रये* त्रिलोक्यां *विश्रुतचरित्रः* विश्रुतविक्रमश्च *रघूत्तमस्य* रामस्यादर्शः *भक्तपुङ्गवः* परिचारको निदेशवहश्च *धीमान् हनुमान् व्रतीश्वरः* ब्रह्मचारी एव *रराज* आसीत् ॥ ३२ ॥

वायु के पुत्र, अञ्जना के आनन्द को बढ़ाने वाले श्री हनुमान का विक्रम और चरित्र विश्व-प्रसिद्ध था। ये बुद्धिमान् वायुपुत्र रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र के आदर्श भक्त थे। ये भी अखण्ड ब्रह्मचारी थे ॥ ३२ ॥

भीष्मप्रतिज्ञं भीष्मं विवृणोति—

अखण्डचारित्र्यपवित्रितान्वयः
पितुर्विदित्वा जनतो मनोव्यथाम्।
चकार सन्धां व्रतितां निषेवितुं
स भीषणं भीष्मपितामहो महान् ॥ ३३ ॥

अखण्डेति । *अखण्ड*चारित्र्येण अविप्लुतब्रह्मचर्येण *पवित्रितान्वयः* पवित्रवंशः *स महान् भिष्मपिता*महो *जनतः* मन्त्रिमुखात् *पितुः* शान्तनोः *मनोव्यथां* मानसिकसमस्याम्। पिता सत्यवत्यामनुरक्तः सत्यवती च स्वोदरजातपुत्रमेव राज्योत्तराधिकारित्वेन नियोक्तुं पणते इत्येतदुत्थां पितुर्द्विधाम् विदित्वा। पितुर्व्यथापनोदाय *व्रतितां* भावे तल् प्रत्ययः। कौमारवृत्ति निषेवितुं *भीषणां सन्धा* प्रतिज्ञाम्, 'सन्धा प्रतिज्ञा मर्यादा' इत्यमरः। *चकार* ॥ ३३ ॥

भीष्म पितामह ने लोगों से अपने पिता की मानसिक व्यथा जानकर आमरण ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने की भीष्म (भीषण) प्रतिज्ञा की थी इसीलिये लोग इन्हें भीष्म कहने लगे थे। इस महान् आत्मा ने अपने उज्ज्वल चरित्र से चन्द्रवंश को पवित्र कर दिया था ॥ ३३ ॥

भारतीयानां ब्रह्मचर्यतेजो विवृणोति—

तनौ तनौ वीर्यनिरोधसम्भवा
व्यराजताभा मनुजन्मदेहिनाम्।
मुखे मुखे रम्यकलेन्दुसन्निभा
मनोरमा सुन्दरता प्रसन्नता ॥ ३४ ॥

तनाविति । *मनोः जन्म* येषां तेषां मनुप्रसूतानां *देहिनां* जनानाम् । *तनौ तनौ* प्रतिशरीरम् । वीप्सायां द्वित्वम् । *वीर्यनिरोधसम्भवा* ब्रह्मचर्य-प्रभवाऽऽभा कान्तिः *व्यराजत* । *मुखे मुखे* च । *रम्या कला* कान्तिर्यस्य तादृशस्येन्दोश्चन्द्रस्य *सन्निभा* तुल्या *मनोरमा* चेतो हरा *सुन्दरताप्रसन्नता* च व्यराजत । तुल्ययोगितालङ्कारः, तल्लक्षणं च यथा चन्द्रालोके—'क्रियादि-भिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता' ॥ ३४ ॥

प्रत्येक भारतवासी के दिव्य देह पर ब्रह्मचर्य की अलौकिक कान्ति छायी रहती थी । प्रत्येक के मुखमण्डल पर पूर्णचन्द्र की सी मनोहर सुन्दरता और प्रसन्नता टपकती रहती थी ॥ ३४ ॥

एवंविधभारते प्राचीनराजानः किं समजोधुष्यन्तेत्याह युग्मेन—

न कुम्भिलो नो कृपणो न मद्यपो
न यज्ञहीनो न बुधेतरो नरः ।
न मेऽस्ति राज्ये व्यभिचारिनर्षयः
कुतस्तदा स्त्रीव्यभिचारिणी भवेत् ॥ ३५ ॥

इति स्वराज्ये समुपेयुषो मुदा
महर्षिशङ्धानवदत् प्रतिज्ञया ।
स केकयेशोऽश्वपतिः सदग्रणीः
प्रजामनोमन्दिरवन्द्यदेवता ॥ ३६ ॥

नेति । *ऋषयः* । ऋषीन् सम्बोध्याश्वपति र्ब्रूते मे मम राज्ये *न कुम्भिल*-श्चौरः *न कृपणः* द्रव्यलुब्धः *न मद्यपः* । गोपाष्टक (पा० ३।२।८) इति ट्प्रत्ययः । *न यज्ञहीनः* यज्ञाधिकारवञ्चितो यज्ञस्याकर्त्ता वा *न* च बुधे-*तरो* मूर्खोजनः, *न व्यभिचारिना* दुराचारो मनुष्योऽस्ति । दुराचारजना-भावे *स्त्री कुतो व्यभिचारिणी* भवेत् । स्वराज्ये *समुपेयुषः* समागतान् । 'उपेयिवाननश्वाननूचानश्च' (पा० ३।२।१०९) इति वस्वन्तनिपातनम् ।

महर्षिसङ्घान् उद्दालकप्रमुखान् इति अनेन प्रकारेण मुदा प्रसन्नतया प्रतिज्ञया सकोणाघातं। मर्यादारक्षकत्वात् स सदग्रणीः केकयेश स्तन्नामकप्रदेशस्य राजा। प्रजाजनस्य मनोमन्दिरस्य वन्द्या वन्दनीया देवता। रूपकालङ्कारः। प्रजामनःसु मन्दिरेषु देवतेवारुढः अश्वपतिः अवदत्।३५-३६।

केकय देश में अश्वपति नाम के एक राजा, जिनको प्रजा अपने हृदय मन्दिर का देवता मानती थी, बड़े ही सद्गुणी थे। एक बार इनके यहाँ महर्षियों की एक मण्डली पधारी। महाराज अश्वपति ने इनसे प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि मेरे देश में चोर, कृपण, मद्यपान करने वाला, यज्ञ न करने वाला, मूर्ख और व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है तब स्त्रियाँ व्यभिचारिणी कहाँ से होंगी ? ॥ ३५-३६ ॥

रामभरतयो राज्यं प्रत्यलोलुपतां सूचयन्नाह युगलेन—

पितुर्वचः पालयितुं वनं गते
रघूत्तमे श्रीभरतो नृपश्रियम्।
प्रदातुकामो द्रुतमेत्य सोऽग्रजं
न्यवीविदत्तद्ग्रहणाय साञ्जलिः ॥ ३७ ॥

न्यषेधिलक्ष्मी भरताग्रजेन सा
न चाग्रजस्नेहवतैष्यतामुना।
तृणाय लक्ष्मीमिह मन्यमानयो—
र्न लभ्यमेतर्हि निदर्शनं ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

पितुरिति। पितुर्दशरथस्य वच आदेशं पालयितुं वनं गते श्रीरामे कनीयान् भ्राताश्रीभरतः नृपश्रियं राजलक्ष्मीं प्रदातुकामः प्रत्यर्पयितुमनाः। 'लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुङ्काममनसोरपि' इति वार्तिकश्लोकेनानेन तुमुनो मकारलोपः। द्रुतं शीघ्रम् अग्रजं ज्येष्ठभ्रातरं रामम्। अग्रेजातः 'सप्तम्यां जनेर्डः' इति डप्रत्ययः। एत्य रामस्याभ्याशे वनं गत्वा। साञ्जलि र्बद्धकरपुटः। तद्ग्रहणाय राजलक्ष्मीं पुनः स्वीकर्तुं न्यवीविदत् प्रार्थितवत्। निपूर्वक विदोण्यन्ताल्लुङि रूपम्। सन्वल्लघुनिचङ्परे ऽनङ्लोपे इत्यभ्या-

सेत्त्वम्। दीर्घो लघोरितिदीर्घः। एवं प्रार्थिते सति भरताग्रजेन रामेन सा राजलक्ष्मीः न्यषेधि। अमुनाचाग्रजस्नेहवता रामाय स्निह्यता भरतेनापि न ऐष्यत अभ्यलष्यत। राजलक्ष्मीमित्थं तृणाय मन्यमानयोस्तिरस्कुर्वतोरेतादृशं निदर्शनमुदाहारणम् एतर्हि सम्प्रति अस्मिन् युगे ध्रुवमलभ्यम्। उत्प्रेक्षालङ्कारः। तल्लक्षणं च 'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादय। उत्प्रेक्षा व्यञ्जकाः शब्दाः' ॥ ३७–३८ ॥

पुरुषोत्तम राम और भरत का नमूना तो आज संसार में ढूँढ़े भी नहीं मिलता। जब पिता की आज्ञा पालन करने के लिये श्री रामचन्द्र चित्रकूट के जङ्गलों में जाकर रहने लगे, तब भरत अपने को मिली हुइ राजलक्ष्मी श्रीराम को समर्पित करने के लिये जल्दी उनके पास पहुँचे और फिर मे राजसिंहासन पर बैठने के लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की। परन्तु राम ने एकदम निषेध कर दिया। इधर भरत ने भी भ्रातृस्नेह के कारण राज्य को ठोकर मार दी। दोनों ने राज्यलक्ष्मी को तिनके के समान तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया ॥ ३७–३८ ॥

दर्शनादिकारान् वर्णयति वृत्तद्वयेन—

पतञ्जलिव्यासकणादजैमिनि–
प्रमाणसांख्यागमकृन्मुनीश्वराः।
स्वयं प्रणीतैरतुलैर्नु दर्शनैः–
न्यदर्शयन्निर्मलबुद्धिवैभवम् ॥ ३९ ॥

पतञ्जलीति। योगदर्शनकारः पतञ्जलिः वेदान्तरचयिता व्यासः, वैशेषिककृत् कणादः, पूर्वमीमांसाकृज्जैमिनिः प्रमाणागमस्य प्रमाणविद्याप्रतिपादकन्यायदर्शनस्य सांख्यागमस्य च कर्त्तारौ गौतमकपिलौ। आगमशब्द उभाभ्यां सम्बध्यते। आगमः शास्त्रम्। एते पतञ्जल्यादयो मुनिश्वरास्तत्त्वचिन्तकाः स्वयं प्रणीतै रचितै रतुलैरगाधैरद्वितीयैश्च दर्शनैः स्वनिर्मलबुद्धे रागद्वेषादिमलापगमात् तत्त्वसाक्षात्करणाच्च निर्मलधियो वैभवैश्वर्यं चमत्कारं च न्यदर्शयन्। तद्दर्शनग्रन्थीवद्यापि जगदाश्चर्यमाविर्भावयति ॥ ३९ ॥

न्यायदर्शनकार गौतम, सांख्यदर्शनकार कपिल, कणाद, व्यास, जैमिनि और पतञ्जलि जैसे ऋषियों ने स्वरचित अनुपम दर्शनों के द्वारा अपनी निर्मल बुद्धि के वैभव का उदाहरण प्रस्तुत किया ॥ ३९ ॥

महेश्वरज्ञानदिवाकरप्रभा-
प्रभासितान्तःकरणा महर्षयः ।
मनुष्यकल्याणधिया धियोज्ज्वलान्
मनोरमान् ग्रन्थमणीन् प्रणिन्यिरे ॥ ४० ॥

*महेश्वरज्ञान*मपौरुषेयज्ञानं वेद इत्यर्थः । रूपकालङ्कारेण तज्ज्ञानमेव *दिवाकरः* सूर्यः । 'दिवाविभानिशाप्रभा' (पा०३।२।२) इत्यादिना दिवोपपदे कृब्यष्टप्रत्ययः । तस्य *प्रभाभिर्दीप्तिभिः प्रभासिता* प्रकाशिता अन्तःकरणा येषां तादृशास्ते महर्षयः स्वज्ञानराशिमवरजनेभ्यः प्रदित्सवः मनुष्य-*कल्याणधिया* मानवहितेच्छया *धिया* ऋतम्भरबुद्ध्या । उज्ज्वलान् भ्रान्ति-हीनान् । भवबन्धच्छेदौपयिकभूतत्वान् मनोरमान् उपनिषदादीन् ग्रन्थ-*मणीन्* प्रणीन्यिरे रचयामासुः । 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (पा० ३।४।८१) इतीरेच् । 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' (पा० ६।४।८२) इति यण् । 'उप-सर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य (पा० ८।४।१४) इति णत्वम् । धियाधि-योज्वलाम् इति यमकम् ॥ ४० ॥

महर्षियों के पवित्र अन्तःकरण में ईश्वरीय ज्ञान की दिव्य ज्योति निरन्तर जगमगाया करती थी, इसीलिये इन्होंने अपनी निर्मल बुद्धि से मानव कल्याण की कामना से अनेक ग्रन्थ रत्नों की रचना की ॥ ४० ॥

प्राचीनसभ्यतोत्कर्षं प्रमाणयति—

गुणोत्तमानन्दितविज्ञमानसै-
र्यदीयनानागमकाव्यवाङ्मयैः ।
वयं विबोद्धुं प्रभवोऽधुनापरां
पुरातनार्यावनिलोकसभ्यताम् ॥ ४१ ॥

गुणेति । गुणेषूत्तमाः । ओजःप्रसादादयः काव्यगुणाः । योगविभागात् सप्तमीतत्पुरुषः । तद्गुणद्वाराऽऽनन्दितानि विज्ञानां विदुषां मानसानि यैस्तैः । यदीयानां भारतीयानां नानागमैः काव्यै र्वाङ्मयैश्च वयमधुना पराम् अतीवोत्कृष्टां पुरातनार्यावनेः प्राचीनभारतभुवः लोकानां जनानां सभ्यतां विबोद्धुं प्रभवः प्रभवामः । प्राचीनसाहित्याध्ययनेन वयमद्यापि पुरातनभारतमहिमानमनुभवितुमर्हामः ॥ ४१ ॥

इन्हीं ऋषि मुनियों ने अनेक शास्त्र-काव्य, अलङ्कार, छन्द, नाट्यशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, सङ्गीतशास्त्र आदि साहित्य की रचना की जो अपने उत्तम गुणों से आधुनिक वैज्ञानिक मनस्वियों को आनन्द विभोर कर देता है । इन्हीं के रचे इन ग्रन्थों द्वारा हम प्राचीन आर्यावर्त के लोगों की सभ्यता जान सकते हैं ॥ ४१ ॥

भारतमहिमानमुपसंहरन्नाह—

अनेकदृष्टान्तसुवर्णसुन्दरं
य एवमादर्शसुचित्रमाचिलखत् ।
नृचित्तभित्तावतुलार्यसंस्कृते-
रहो दयानन्दयतिर्जयत्यसौ ॥ ४२ ॥

अनेकेति । यो दयानन्द एवम् उपर्युक्तदिशा । अतुलाया अनुपमाया आर्यसंस्कृतेः अनेकदृष्टान्ता एव सुवर्णाः शोभनरञ्जकपदार्थास्तैः सुन्दरं मनोहरम् । 'दृष्टान्तेन स्वपक्षोविशदीक्रियते' इति वात्स्यायनो न्याये । तस्मादेव दृष्टान्तैः दयानन्दो भारतगौरवं प्रामाणयत् । आदर्शस्य सभ्यता-प्रतीकस्य सुचित्रं नृणां भारतीयानां चित्तरूपायां भित्तौ आलिखत् अरचयत् । भारतीयानां स्वोत्कृष्टसभ्यतां प्रति दृढं विश्वासमकारयत् । अहो ! हर्षे । असौ दयानन्दो ब्रह्मचारी जयति लोकेऽद्यापि गीयते गास्यते च शाश्वतम् । परम्परितरूपकालङ्कारः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार अनेक दृष्टान्तों (उदाहरण, आख्यायिक, प्रमाण आदि) द्वारा यतिवर दयानन्द ने भारतवासियों के हृदयरूपी भींत पर अद्वितीय आर्यसंस्कृति

का सुनहरा आदर्श चित्र खींचा। इस ऋषि (दयानन्द) का ही आज जय जयकार हो रहा है॥ ४२॥

दयानन्दस्य शास्त्रार्थचातुरी वृत्तद्वयेन वर्णयति—

सदो वनान्ते प्रतिवादिदन्तिनो
भयङ्करौङ्कारविनादगर्जितम्।
मृगेश्वरस्येव मुनीश्वरस्य तन्
निशम्य संशिश्रियिरे दिशो द्रुतम्॥ ४३॥

सद इति। सदः सभा तदेव वनान्तो वनप्रदेशः तस्मिन् मृगेश्वरस्य सिंहस्य इव मुनीश्वरस्य दयानन्दस्य तद् भयङ्करौङ्कारनिनादगर्जितं युक्तियुक्तत्वादप्रत्याख्येयत्वाच्च भयङ्करा हृदयस्पृश ओङ्कारपुरस्सरं ये निनादाः शब्दा एव गर्जितं गर्जनम्। 'नपुंसके भावे क्तः' (पा. ३।३।११४) इति भावेक्तः। निशम्य श्रुत्वा। प्रतिवादिदन्तिनः प्रतिवादिषु दन्तित्वमारोपितम्। भीता इव द्रुतं दिशः संशिश्रियिरे पलायाञ्चक्रिरे। न कश्चिदपि वादयुद्धे सम्मुखं स्थातुं प्राभवदित्यर्थः। परम्परितरूपकालङ्कारः॥ ४३॥

जैसे जङ्गल में शेर की गर्जना से सियार से लेकर हाथी तक छोटे-मोटे पशु इधर-उधर दिशाओं में भाग जाते हैं वैसे ही इस मुनीश्वर का भयङ्कर ओङ्कार नाद सुनकर मतमतान्तर वादी दिग्गज पण्डित भी भाग खड़े होते थे॥ ४३॥

प्रमाणनिस्त्रिंशसुतर्कसायकैः
सभारणे तान् प्रतिपक्षिपण्डितान्।
अधर्मवर्मावृतगात्रमण्डलान्
बिभेद यः शास्त्रिमहारथो भटान्॥ ४४॥

प्रमाणान्येव निस्त्रिंशाः खड्गाः, सुतर्का अकाट्ययुक्तय एव च सायकाः शराः। 'शरे खड्गे च सायकः' इत्यमरः। तैः प्रमाणनिस्त्रिंशसुतर्कसायकैः सभारणविवादयुद्धे तान् प्रतिपक्षिपण्डितान्। अधर्मो वेदविरुद्धसिद्धान्त एव वर्म कवचस्तेनावृतगात्रमण्डलाँस्तत्सिद्धान्तावलम्बिनः। यः शास्त्रि-

महारथो वेदादिशास्त्रज्ञो महा*भटः* शास्त्रयुद्धविशारदः। *भटान्* प्रतिपक्षि-योधान्। *विभेद* पराजेष्ट। सोऽसौ दयानन्दो जयतीति सर्वत्र सापेक्षवृत्तेषु-बोध्यम्। परम्परितरूपकालङ्कारः॥ ४४॥

जैसे युद्धभूमि में युद्धकलानिपुण सेनापति कवचधारी शत्रु सैनिकों के शरीरों को अपनी पैनी तलवार, तीर आदि शस्त्रों से छेद देता है, वैसे ही शास्त्रार्थ महारथी दयानन्द ने अधर्म से आवृत प्रतिपक्षी पण्डितों (सन्त, महन्त आदि) की मण्डली को प्रबल प्रमाण और तर्क से छिन्न-भिन्न (परास्त) कर दिया॥४४॥

दयानन्दस्य महिमानं तच्चरितरचनाहेतुत्वेन वर्णयति सर्गान्तम्—

यदीयतेजोरविणा विकाशिता
मनोज्ञवेदागमवृक्षवाटिका।
सतां हृदाशा महिलापिकस्वराः
कवीन्द्रकाव्यप्रतिभासरोजिनी॥ ४५॥

यदीयं यस्य। 'वृद्धाच्छः' (पा. ४।२।११४) इति छप्रत्ययः। तेजो व्यापकप्रभाव एव *रविस्तेन* मनोज्ञानां मनोरमाणां *वेदागमानाम्* एव वृक्षाणां *वाटिका विकाशिता*। तस्य प्रभावेण वेदविद्याप्रचारः स्फीति-मुन्नायं चावाप्तः। *सतां* सत्पुरुषाणां *हृद आशा* एव हार्दिकीच्छा एव दिशः *विकाशिताः* प्रकाशं नीता इत्यर्थः। हृदयस्याशा इति विग्रहे तु 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' (पा. ७।३।५०) इति हृदादेशः। *महिलानां पिकरूपाणां स्वरा विकाशिताः*। स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम् इति कल्पितवचो-ऽभियुक्ताः पुरा स्त्रियोऽर्गलिताधरा मन्दादरा विद्यायामनधिकृता आसन्, दयानन्दस्तु ताभ्योऽध्ययनाधिकारमदीदपत् तस्मादेवाद्य विलसति तासां वाचां प्रचारः। *कवीन्द्राणां* दयानन्दमधिकृत्य कवयितॄणां *काव्यस्य प्रतिभासरोजिनी* ऊहाकमलिनी तेनैव *विकाशिता*। अन्यथा तदभावे कथमिव मुनिर्मेधाव्रतोऽपि दयानन्ददिग्विजयं विरचयेत्। रूपकालङ्कारेण संसृष्टस्तुल्यप्रतियोगितालङ्कारः॥ ४५॥

इसी ऋषि (दयानन्द) के तेजस्वी सूर्य ने वेदशास्त्रों के विशाल उद्यान विकसित किये, सत्पुरुषों के हृदय की आशारूपी दिशाओं को आलोकित किया,

महिलासमाजरूपी कोकिलागण को बोलने के लिये मधुर कण्ठ दिया और कवियों की काव्यप्रतिभारूपी कमलिनी को खिलाया ॥ ४५ ॥

षडङ्गवेदाब्ध्यवगाहसंस्कृता
सरस्वती यद् रसनाग्रनर्त्तकी ।
प्रसन्नवर्णा सगुणा श्रुतिप्रिया
मनोहराऽभान्नितरां द्विषामपि ॥ ४६ ॥

षडङ्गानि येषां ते षडङ्गवेदाः । शिक्षा व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषं कल्प इति वेदाङ्गानि षट् । साङ्गाश्चत्वारोवेदा एवाब्धयः सागराः । आपोधीयन्तेऽस्मिन्निति अब्धिः । 'कर्मण्यधिकरणे च' (पा. ३।३।९३) इति कि प्रत्ययः । तेषामवगाहेनावलोकनेन संस्कृता परिष्कृता । यद् रसनाग्रनर्त्तकी यस्य दयानन्दस्य जिह्वाया अग्रभागे नर्त्तकी 'शिल्पिनिष्वुन्' (३।०।१४५) इति नृतः ष्वुनि, षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष् । दयानन्दस्य कण्ठस्था सरस्वती सदा स्मृतत्वात् प्रसन्नवर्णा विस्मृतिमलहीना । सगुणा आनन्दवर्धकत्वात् श्रुतिप्रिया कर्णमधुरा सती द्विषामपि नितरां मनोहराऽऽसीत् । विरोधिनोऽपि तस्य विद्यां मुक्त कण्ठं प्रसशंसुः । अत्र शब्दस्य द्विट् शब्देन सह सापेक्षत्वादपि 'भवति ही सापेक्षस्यापि प्रधानस्य समासः' इति भाष्यप्रामाण्यात् समासः ॥ ४६ ॥

सरस्वती इनकी जिह्वा के अगले भाग पर नाचा करती थी, जो छहों अङ्गो सहित वेदरूपी सागर के अवगाहन से संस्कृत (परिष्कृत) थी, जो सुन्दर वर्ण (रङ्गरूप तथा अक्षर) वाली, ओजस्वती (ओजो गुणवाली) तथा प्रसाद (प्रसन्न) गुण वाली, सुनने में मधुर तथा शत्रुओं के मन को लुभाने वाली थी ॥ ४६ ॥

स मन्महिम्ना महिलाजनः पुनः
स्ववेदविद्याध्ययनाधिकारवान् ।
सुमन्त्रशिक्षामुपवीतदीक्षया
प्रपद्य भेजे निजगौरवश्रियम् ॥ ४७ ॥

स *महिलाजनः* वनितावृन्दम्। जातावेकवचनम्, 'प्रतीपदर्शिनी-वामावनिता महिला तथा' इत्यमरः। *यन्महिम्ना* यस्यौदार्येण, 'उदारः दातृमहतोः' इत्यमरः। पूर्वं तत्रानधिकृतत्वात् पुनः स्ववेदविद्याध्ययने-ऽधिकारवान्। जातः इति शेषः। स महिलावर्गं *उपवीतदीक्षया* यज्ञ-सूत्रधारणपूर्वकं सुमन्त्रशिक्षां वेदाध्ययनं *प्रपद्य* नष्टपूर्वां निजगौरवश्रियं 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' इत्येवंरूपां पूर्ववन्नारी-जनोचितां प्रतिष्ठां *भेजे*। अतः एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि इत्येत्त्वा-भ्यासलोपौ ॥ ४७ ॥

इसी ऋषि (दयानन्द) की महिमा से स्त्रियों को उपनयन तथा वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त हुआ और फिर से अपने गौरवपद को (स्त्रियों ने) प्राप्त किया ॥ ४७ ॥

स शूद्रवर्णोऽपि मनुष्यभावतः
स्वजन्मसिद्धाधिकृतिं प्रलम्भितः।
पवित्रवेदामृतपानदानतः
कृतार्थितो यस्य सुशास्त्रमुक्तितः ॥ ४८ ॥

पुरा यो वेदेऽनधिकृत आसीत् स *शूद्रवर्णोऽपि मनुष्यभावतः* मनुष्य-स्वरूपत्वात्। हेतौ पञ्चमी। यथा ब्राह्मणादयो मनुष्यास्तथैव शूद्रोऽपि मनुष्यः। अस्मादेव कारणाद् वेदाध्ययनविषयिकां *स्वजन्मसिद्धाधिकृतिं* जनुषा सिद्धं वेदाध्ययनाधिकारं *प्रलम्भितो* गमितः। 'लभेश्च' (पा. ७।१।६४) इति नुम्। यस्य दयानन्दस्य सुशास्त्रयुक्तितः 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः' इत्यादिकस्य शूद्राणां वेदाध्ययनाधिकार-विधायकशास्त्रस्य प्रमाणतः शूद्रवर्णः *पवित्रवेदस्यामृततुल्यमन्त्राणां पान-दानतः* सेवनात् कृतार्थितः सफलितोऽनुगृहीतश्च ॥ ४८ ॥

शूद्रों को भी मनुष्य का जन्मसिद्ध (वेदाध्ययन) अधिकार शास्त्रों के प्रमाण और युक्तियों से दिलाया जिससे ये भी पवित्र वेद के पान (अध्ययन) से कृतार्थ हुये ॥ ४८ ॥

मुखाम्बुजब्राह्ममहो महोज्ज्वलं
रवेरिवालं न दिवान्धमानवाः ।
निरीक्षितुं यस्य विशालवक्षसो
निलिल्यिरे तद्गृहकन्दरेषु ते ॥ ४९ ॥

दिवान्धा उलूका स्तद्रूपा *मानवा* मनुष्याः। *यस्य विशालवक्षसो* महोरस्कस्य दयानन्दस्य *महोज्ज्वलं* प्रकृष्टेन दीप्तिमत् *मुखाम्बुजं ब्राह्म-महो*वदनारविन्दतैजसं *रवेस्तेज इव* सूर्यप्रखरबिम्बमिव *निरीक्षितुम्* अभिमुखीभवितुं *नालं* नाशक्नुवन्। ते *तत्* तस्मात् पराभूता *गृहकन्दरेषु* गृहाणि एव कन्दराणि तेषु स्वगेहगूढगह्वरेषु *निलिल्यिरे*ऽन्तर्दधिरे। रूपकालङ्कारः॥ ४९ ॥

जैसे उल्लू सूर्य के प्रकाश से अपनी कन्दराओं (घोंसलों या गुफाओं) में जा छिपते है वैसे ही विरोधी लोग इस ऋषि के ब्रह्मवर्चसयुक्त मुखमण्डल को देखकर घरों में घुस जाते थे ॥ ४९ ॥

मोहाब्धिमग्नजनतातरणिं विपत्ते-
रुद्धर्त्तुमिच्छुरजहान्निजमुक्तिसौख्यम् ।
यो ध्यानदृष्टपरमेश्वरलाभतुष्ट-
स्तस्यास्तु पुण्यचरितं जगतो हितार्थम् ॥ ५० ॥

मोहाब्धौ अज्ञानसागरे *मग्नाया जनतायाः*। जनानां समूहः जनता, 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्', (पा. ४।२।४३) इति समूहे तल्। *तरणिं* नौकाम्। 'स्त्रियां नौस्तरणिस्तरिः' इत्यमरः। मानवानां जीवनम् इत्यर्थः। *विपत्तेः* सांसारिकक्लेशाद् उद्धर्त्तुं विमोचयितुं *यो* दयानन्दो *ध्यानेन* समाधिना *दृष्टस्य* साक्षात् कृतस्य *परमेश्वरस्य* लाभेन प्राप्त्या *तुष्ट* आनन्दितः सन्नपि जनहितकाम्यया *निजमुक्तिसौख्यमजहात्* अत्यजत्। ओहाक् त्यागे इति धातोर्लङि प्रयोगः। *तस्य* परमकरुणाप्लुतस्य ऋषेरिदं दयानन्ददिग्विजयनामकं पुण्यचरितं निष्कलङ्कवृत्तं *जगतोहितार्थमस्तु*

एतस्मादेव च कारणादहं कविः दयानन्दचरितं वर्णयितुं प्रवृत्त इति ध्वनिः। तुलनीयः कालिदासः 'तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः' (रघु. १।)। छन्दोऽत्र वसन्ततिलकम्, 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग०' इति लक्षणात्॥ ५०॥

मोहरूपी समुद्र में मग्न जनता रूपी नौका को विपत्तियों से बचाने की इच्छा से जिन्होंने अपने मुक्ति के सुख को त्याग दिया जो निरन्तर समाधि में ईश्वर के दर्शनों से ही प्रसन्न रहते थे, इस प्रकार के महापुरुष (दयानन्द) का चरित्र जगत् के कल्याण के लिये हो॥ ५०॥

दयानन्दोद्दिष्टां जगत्प्रति कविराशिषं प्रयुङ्क्ते—

संसारेस्मिन् विलसतु पुनः भव्यवेदांशुमाली
संस्काराणां भवतु महतां पावनानां प्रचारः।
लोकस्वान्ते सकलसुखदा स्यन्दतां स्नेहधारा
दिव्यानन्दे मनुजहृदयं लीयतां ब्रह्मणीदम्॥ ५१॥

इति वृन्दावनगुरुकुलविश्वविद्यालयाधिगतविद्यारत्नस्य वटोदरार्य-कन्यामहाविद्यालयाचार्यस्य श्रीपण्डितमेधाव्रतकविरत्नस्य कृतौ दयानन्ददिग्विजये ब्रह्माङ्के महाकाव्ये पुरातनभारतगौरव-वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः॥ १॥

संसार इति। *अस्मिन्* संसारे। मध्यकाले वैदिकधर्मस्य लुप्तत्वात् पुनः *भव्यः* प्रशस्तः। 'भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम्। शस्तं च त्रिषु' इत्यमरः। तादृशो वेद एवांशुमाली सूर्यः विलसतु उत्कर्षमाप्नोतु। *महतामुत्कर्षाधायकानां पावनानां* परिष्कृतां *संस्काराणां* मानसव्यापाराणां। 'संस्कारः प्रतियत्नेऽनुभवे मानसकर्मणि' इति मेदिनी। *प्रचारः* प्रगतिर्भवतु। *लोकस्वान्ते* मानवहृदये, 'स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः। सकलेभ्यः सुखं *सकलसुखम्*। 'चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै'रिति समासः। सकलं च तत् सुखं *सकलसुखमिति* वा। तद्ददाति 'आतोऽनुपसर्गेकः' इति कप्रत्ययः। तादृशी *स्नेहधारा* प्रेमपूरः *स्यन्दतां* प्रवहतु।

एतादृशस्नेह धाराप्लुतं मनुजस्येदं हृदयं ब्रह्मणि लीयताम्। सर्वोऽपि-लोको मोक्षभाग् भवत्वित्यर्थः। मन्दाक्रान्तावृत्तम्, तल्लक्षणं च यथा पैङ्ग-लच्छन्दःशास्त्रे, 'मभौ न तौ तगौ ग् समुद्रर्तुस्वराः (६।१९) ॥ ५१ ॥

इत्यधीतसाङ्गोपाङ्गवेदचतुष्टयेन आचार्यमहावीरेण विरचितया विजय-मङ्गलाख्यया व्याख्यया समेतो महाकविमुनिमेधाव्रतकृतौ दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये भारतगौरववर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

संसार में फिर से वेदरूपी सूर्य का प्रकाश फैल जाये, पवित्र वैदिकसंस्कारों का आर्यजनों में प्रचार हो, लोगों के अन्तःकरणों में सब का कल्याण करने वाली प्रेम की धारा बहे और प्रत्येक मानव का हृदय अलौकिक आनन्द में डूब जाये ॥ ५१ ॥

इति प्रथम सर्ग।

द्वितीयः सर्गः

"विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमाः
भूपाला मदिरानिपानमधुरोन्माद्यन्मदाघूर्णिताः।
आस्ये धास्यतिकस्य लास्यमधुनाऽधन्यस्य कामालसत्-
स्वर्वामाधरमाधुरीमधरयन् वाचां विलासो 'मम् ॥"

भारतभुवं वर्णयति—

हिमाद्रिविन्ध्याचललालिताभि-
नंदीभिरामण्डितभूमिखण्डा ।
स्वपूर्वजानन्तयशःशशाङ्कैः
शुक्लीकृता भारत-भूश्चकास्ति ॥ १ ॥

हिमेति। उत्तरस्यां दक्षिणस्यां च क्रमशः *हिमाद्रिणा विन्ध्याचलेन* च तदुद्गमस्थानत्वात् *लालिताभिः* पोषिताभिर्वर्धिताभिश्च । गङ्गायमुनादिभिः; महानदीनर्मदाताप्रीप्रभृतिभिश्च नदीभिः *आमण्डितभूमिखण्डा* भूषित-भूभागा। *स्वपूर्वजानां* पूर्वं जातः पूर्वजः। 'अन्येष्वपि दृश्यते' (पा. ३।२।१००) इति डप्रत्ययः। ब्रह्मादीनां वेदविदां गोतमादीनामृषीणां मन्वादीनाञ्च राज्ञां *यशः शशाङ्कैः* कीर्तिचन्द्रैः *शुक्लीकृता* अशुक्ला शुक्ला कृता 'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'(पा. ५।४।५०) इति च्विः। 'अस्य च्वौ' (पा. ७।४ ३२) इतीत्वम्। पृथ्वीस्वरूपत्वाद् अशुक्ला। तथाविधा *भारतभूः*। *चकास्ति* शोभते। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। सर्गेऽमुष्मिन् उपजातिवृत्तम्। तल्लक्षणं च यथा—पैङ्गलच्छन्दःशास्त्रे, 'आद्यन्तावुपजातयः, (६।१८)'। परम्परितरूपकालङ्कारप्रायोऽयं सर्गः ॥१॥

भारत भूमि का वर्णन :—

हिमालय और विन्ध्याचल (जैसे) पर्वतों से लालित पालित (निकलने वाली) नदियों (गङ्गा, यमुना, महानदी, गोदावरी आदि) से भारत के सारे

प्रदेश-भूमिखण्ड-सुशोभित हैं, यह अपने पूर्वजों (वीर, विद्वान्, सदाचारी, ऋषि, मुनि, विजाता राजा, क्षत्रियादि) की यशश्चन्द्रिका से श्वेत हुई प्रकाशित हो रही है ॥ १ ॥

महार्हरत्नोदयशैलराजौ
महाम्बुधीतुङ्गतरङ्गहस्तैः ।
आनीय मालां मणिमौक्तिकानां
यस्या ददाते चरणारविन्दे ॥ २ ॥

महार्हरत्नोदयशैलराजौ महार्हाणां महामूल्यानां रत्नानामुदयः प्रादुर्भावो याभ्यां तौ शैलराजाविव । उत्पूर्वकाद् इण् धातोः 'एरच्' (पा. ३।३।५६) इति भावेऽच् प्रत्ययः । शैलराजौ पर्वतानां राजानौ 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' (पा. ५।४।९१) इति समासान्तष्टच्प्रत्ययः । *महाम्बुधी* दक्षिणस्यां पश्चिमायां च दिशि हिन्दमहासागरअरबमहासागर इति नामानौ *तुङ्गा* उच्छ्रितास्तरङ्गा एव *हस्तास्तैः मणिमौक्तिकानां* महार्घरत्नानां *मालामानीय यस्या* भारतभुवः *चरणारविन्दे* प्रशस्तपादे 'प्रशंसावचनैश्च' (पा. २।१।६६) इति समासः । *ददाते* अर्पयतः । द्वावपि महासागरौ सेवकवत् यां भारतभुवं रत्नैः सेवेते सा भारतभूः चकास्तीत्यन्वयः । अग्रेऽप्येवमेवान्वेतव्यम् । गम्यमानोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ २ ॥

अनेक मूल्यवान् रत्नों को उत्पन्न करने वाले हिन्दमहासागर तथा अरब सागर विशाल तरङ्ग रूपी हाथों से मोतियों की माला लाकर इस माता के चरणाविन्द पर अर्पण करते हैं ॥ २ ॥

फलद्रुमालङ्कृतसस्यदेशा
नानाविहङ्गारवगुञ्जिताशा ।
सर्वर्तुशर्मप्रदवायुतोया
सर्वाशतो या सुरलोकसेव्या ॥ ३ ॥

फलेति । फलद्रुमालङ्कृतसस्यदेशा फलान्येषां सन्तीति फलाः 'अर्श आदिभ्योऽच्' (पा. ५।२।१२७) इत्यच् प्रत्ययः । फलाश्च ते द्रुमा वृक्षाः ।

'दुद्रुभ्यांमः' (पा. ५।२।१०८) इति मत्वर्थीयो मप्रत्ययः। तादृशैर्वृक्षैः अलङ्कृताः सस्यदेशाः सस्यस्थानानि यस्याः। नानाविधानाम्। 'विनञ्भ्यां नानाञौ न सह' (पा. ५।२।२७) इति नञ् प्रत्ययः। विहङ्गानां पक्षिणाम्। 'विहायसो विह च' (२।३।३८) इति वार्तिकेन विहायसुपपदे गम् धातोर्डप्रत्ययः, विहायसश्च स्थाने विहादेशः। आखः शब्दः। आङि उपपदे रुधातोः 'ऋदोरप्' इत्यप् प्रत्ययः। 'शब्दे आखारावसंरावविरावा' इत्यमरः। तैः गुञ्जिताः प्रतिध्वनिता आशा दिशो यस्याः, 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः। सर्वेषु ऋतुषु शर्मप्रदा शान्तिदायकाः, "आतोऽनुपसर्गे कः" (३।२।३) इति कः प्रत्ययः। वायवः तोयं च यस्याः। या सर्वाशतः सर्वप्रकारेण सुरलोकसेव्या देवगणपूज्या। तादृशी सा भारतभूः चकास्ति ॥ ३ ॥

(यह भारत-भूमि) फलफूल के वृक्षों और अनाज के लहलहाते खेतों से सदा हरी भरी रहती है। यहाँ तरह-तरह के पक्षियों के मधुर कलरव से दिशायें शब्दायमान रहती हैं। इस का जलवायु प्रत्येक ऋतु में सुखदायक है, यह सब प्रकार से देवताओं के सेवन योग्य है ॥ ३ ॥

वीरैकभोग्या शुभयज्ञयोग्या
पुण्यात्मनां कल्पतरूपमेया।
निःश्रेयसस्वभ्युदयोपलब्धौ
सहायिका या सहधर्मिणीव ॥ ४ ॥

वीरेति। वीरप्रसूत्वात् वीरैकभोग्या केवलवीरवश्या। शुभानां पुण्यफलप्रदानां यज्ञानां योग्या यागानुष्ठानाय सुतरामुचिता। 'कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः। स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥' इति मनुनाप्युक्तम्। पुण्यात्मनां महात्मनां कल्पतरुणा उपमेया उपमातुमर्हा। यथा कल्पतरुरभीप्सितं फलं प्रयच्छति तथेयमपि भारतभूः प्रयतात्मनां कृते सङ्कल्पितं फलं प्रसूते। निश्रेयसस्य मोक्षस्य स्वभ्युदयस्य ऐहलौकिकस्य च फलस्य उपलब्धौ या सहधर्मिणी, पत्नीव 'पत्नी पाणिगृहीती च द्वितीया सहधर्मिणी' इत्यमरः। या भारतभूः सहायिका

वर्तते। सह अयते इति इण् धातोः ण्वुल् प्रत्ययः। स्त्रियां टापि 'प्रत्ययस्थात्कात् पूर्वस्याद इदाप्यसुपः' (पा. ७।३।४४) इतीत्वम्। अत्रैवागत्य जना-अभ्युदयनिःश्रेयसं लभन्ते इत्यर्थः ॥ ४ ॥

इसका उपभोग वीर ही एक मात्र कर सकते हैं, यज्ञ के लिये यह प्रशस्त भूमि है, पवित्र आत्मा के लिये यह कल्पवृक्ष के समान है। सांसारिक सुख और मोक्ष प्राप्ति में यह अर्धाङ्गिनी की भाँत सहायता देती है ॥ ४ ॥

भारतोन्नतिं चित्रयति—

प्रकाशिका वेदरविप्रभाणां
प्रभातवेलेव मुनीन्द्रवन्द्या।
विद्याकलारत्नखनिर्वरेण्या
गुरुस्थली याखिललोककाम्या ॥ ५ ॥

प्रकाशिकेति वेदरविप्रभाणां वेदसूर्यकिरणानां *प्रकाशिका*। अत्रैव भारतभुवि वेदाः प्रादुर्भूता इत एव चान्यत्र प्रचारं प्रापुः। प्रभातवेला यथा सर्वैः वन्द्यते तद्वत् पुण्यभूमित्वात् या *मुनीन्द्रै वन्द्या* नमस्या। आन्वीक्षिकीदण्डनीतिः त्रयी वार्त्तेति चतस्रो विद्याः। याज्ञवल्क्यानुसारेण तु 'पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः। वेदस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।' इति चतुर्दशविद्याः। तासु चतुर्णामुपवेदानां सम्मेलनेनाष्टादश *विद्याः*। *कलाः*शिल्पकलादयः तासां रत्नरूपाणां *खनिः* आकरः, 'खनि स्त्रियामाकरः' इत्यमरः। 'खनिकस्यज्यसिवसिसनिध्वनिग्रन्थिचरिभ्यश्च' (उणादि. ४।१४०) इति 'औणादिक इप्रत्ययः। तस्मादेव कारणात् *वरेण्या* वरीतुमर्हा। *गुरुस्थली* गुरूणां स्थानम्। इत एव अन्यदेशीयाः शिक्षामग्रहीषुः, तथा च मनुः—'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः (२।२०) ॥ या भारतभूः *अखिललोकैः* निखिलजनैः सर्वसम्पत्तियुक्तत्वात् *काम्याः* आसीत् ॥ ५ ॥

वेदरूपी सूर्य की किरणों को यह प्रकाशित करने वाली है, मुनियों के द्वारा यह उषा की भाँति वन्दनीय है। विद्या, कला आदि रत्नों की यह खान है,

(समस्त संसार के) गुरुओं की यह भूमि है। (अतः) सब लोगों के लिये यह कमनीय है ॥ ५ ॥

हिमालयो रम्यमहीरूहाणां
शाखाकराग्रैर्दलसम्पुटेषु ।
आदाय देव्यै सुफलोपहारान्
यस्यै सदा सेवकवत् प्रदत्ते ॥ ६ ॥

हिमेति। *हिमालयस्तन्नामा पर्वतः*। हिमस्य आलयः हिमालयः। आलीयतेऽस्मिन्नित्यालयः। 'पुंसि सञ्ज्ञायां घः प्रायेण' (पा. ३।३११८) इति अधिकरणे घप्रत्ययः, 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः' इत्यमरः। *रम्यमहीरुहाणां* रुचिरशाखिनाम्। मह्यां रोहन्तीति मूलविभुजादित्वात् कप्रत्ययः। *शाखा एव करा* हस्ता तेषामग्रैरग्रभागैः पल्लवैः। दलसम्पुटेषु पत्रसमुद्गकेषु *सुफलोपहारान्* स्वादुफलानि उपहाररूपेण *आदाय* आनीय *यस्मै* देव्यै भारतभुवे *सदा सेवकवत्* 'तेन तुल्यं क्रियाचेद्वतिः' (पा. ५।१।११५) इति वतिप्रत्ययः। 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' (पा. १।१।३८) इति अव्ययसंज्ञा। *प्रदत्ते* प्रयच्छति। अत्र परम्परितरूपकालङ्कारः ॥ ६ ॥

इस (भारत भूमि) के लिये हिमालय सुन्दर वृक्षों की शाखारूपी हाथों से पत्तों के दोनों में सदा मीठे पत्रों की भेंट सेवक की तरह देता रहता है ॥ ६ ॥

षण्णामृतूनां रमणीयरूपै
रुपस्थिता भारतरङ्गमञ्चे ।
स्फुरद्विलासा प्रकृतिर्नटीयम्
यस्या मनो नन्दयति प्रकामम् ॥ ७ ॥

षण्णामिति। ग्रीष्मवर्षाशरच्छिशिरहेमन्तवसन्तानां *षण्णाम् ऋतूनां* प्रतिऋतुनवीनत्वाधायकत्वात् *रमणीयरूपैः* स्फुरद्विलासा चञ्चललीला *प्रकृतिः नटी* नर्तकी यस्या भारतभुवः *मनः*, अत्र तात्स्थ्योपाधिः। भारत-

भूवासिनां मन इत्यर्थ। *प्रकामं* सुतरां नन्दयति। षड्ऋतुरूपेणावर्तमाना प्रकृतिस्त्री नितरां शोभते इत्यर्थः॥ ७॥

भारत भूमि के रङ्गमञ्च पर प्रकृति-नटी समय-समय पर छ ऋतुओं के सुन्दर रूपों को धारण कर उपस्थित होती है और इस के मन को सुन्दर विलासों से खूब प्रसन्न करती रहती है॥ ७॥

यशोबलाभ्यां सितचामराभ्यां
साम्राज्यलक्ष्मीस्सह शान्तिदेव्या।
धर्मातपत्रां नयदण्डहस्तां
यां पुण्यभूमिं सुचिरं सिषेवे॥ ८॥

यशइति। *यशोबलाभ्यां* धर्ममर्यादारक्षणात् संजातयशसा नीतिपालनाच्च संवर्धितबलेन। *सितचामराभ्यामनेन* यशो बलरूपेण श्वेतचामरद्वयेन शान्तिदेव्या सह साम्राज्यलक्ष्मीः। 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह'—(अथर्ववेदे) इति श्रुतिरत्र सङ्गच्छते। *धर्मातपत्रां* धर्मछत्राम्। धर्मपूर्वकमेव राज्यमासीदिति ध्वनितम्। *नयदण्डहस्ताम्* नयस्य दण्डो हस्ते यस्य नीतिशालिनीम् इत्यर्थः। नीतिरपि राज्याय सुतरामपेक्षिता। *यां पुण्यभूमिं* भारतभुवं *सुचिरं* सुबहुकालं *सिषेवे* भेजे॥ ८॥

चामरों को लेकर धर्मच्छत्र और नीतिदण्ड को धारण करने वाली इस भारत भूमि की हजारों वर्ष तक सेवा करती रही॥ ८॥

अयोनिभा अन्यदरिद्रदेशा
यां रत्नधां स्पर्शमणिस्वरूपाम्।
संस्पृश्य जातास्तपनीयतुल्याः
सुवर्णचित्रां रुचिरार्थशोभाम्॥ ९॥

अथ इति। *अयोनिभा* लोहसमा *अन्यदरिद्रदेशा* ऐश्वर्यहीनाः। अन्ये पाश्चात्या विद्यैश्वर्यशून्या अतएव दरिद्रदेशाः *यां* भारतभुवं वैभवत्वात्

सुवर्णचित्रां राजतराजितां रुचिरार्थशोभां रुचिरेण मनोमोहकेन अर्थेन द्रव्येण शोभा यस्या लोचनलोभनीयद्रव्यवती तां रत्नधां महामणिवतीम्। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं रत्नं तदभिधीयते'। महामूल्यपदार्थधारयित्रीम् आढ्यङ्करणत्वात् स्पर्शमणिस्वरूपाम्। स्पर्शमणिः स उच्यते यस्य स्पर्शमात्रेण लोहमपि हाटकं जायते। संस्पृश्य सम्पृच्य तपनीयतुल्यास्सुवर्णसमा जाताः। 'स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेमहाटकम्। तपनीयं शातकुम्भम्' इत्यमरः। भारतमेवोपजीव्यान्यदेशाः समृद्धा जाता इत्यर्थः ॥९॥

यह भारत भूमि अनेक धातु रत्नों (सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना, नीलम आदि) से सुशोभित है। यह पारसमणि के समान है, इसके संस्पर्श से दुनिया के अन्य लोह तुल्य दरिद्र देश स्वर्णमय बन गये ॥ ९ ॥

भारतस्य पतनं वर्णयति—

एकेश्वरोपासनमात्मनीनं
विहाय वेदप्रतिकूलरीत्या।
स्वशेमुषीकल्पितमूर्तिपूजा-
मारेभिरे कर्त्तुमिहार्यलोकाः ॥ १० ॥

एकेति। आत्मनीनमात्मने हितम्। 'आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः' (पा. ५।१।९) इति खप्रत्ययः। एकेश्वरोपासनम् एक एव ईश्वरः। 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाःसमानाधिकरणेन (पा. २।१।४९) इति समासः। तस्य उपासनं। 'ण्यासश्रन्थोर्युच्' (पा. ३।३।१०७) इति युच् प्रत्ययः। विहाय परित्यज्य वेदप्रतिकूलरीत्या अवैदिकरीत्या स्वशेमुषीकल्पितमूर्तिपूजां स्वबुद्ध्या-ऽऽविष्कृतपाषाणनिर्मितमूर्तीनां पूजां कर्त्तुमार्यलोका भारतीया आरेभिरे ॥ १० ॥

भारत की दुर्दशा का वर्णन :—

आत्मा का कल्याण करने वाली एक ईश्वर की उपासना को छोड़कर यहाँ के आर्य लोगों ने वेदविरुद्ध, स्वकपोल-कल्पित मूर्ति पूजा करनी प्रारम्भ कर दी ॥१०॥

लोकोपकारक्षमयज्ञकार्ये
कुक्षिम्भरिब्राह्मणबन्धुसङ्घाः ।
निर्दोषसत्त्वान् मनुजांश्च हत्वा
वह्नावहौषुः श्रुतिमन्त्रपूते ॥ ११ ॥

लोकेति । विविधकामपूरकत्वात् *लोकोपकारक्षमयज्ञकार्ये* संसारस्योपकाराय समर्थे यागविधौ कुक्षिम्भरय उदरपरायणाः । 'फलेग्रहहिरात्मम्भरिश्चे' (पा. ३।२।२६) त्यत्र चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् कुक्षिम्भरिः इत्यादयोऽपि साधनीयाः तादृशाः ब्राह्मणबान्धवः । बन्धुशब्देऽत्र कुत्सायाम् । ततश्च 'कुत्सितानि कुत्सनैरि'ति (पा. २।१।५३) समासः । तेषां सङ्घाः 'पशुमालभेत' इत्यादि वचनैः *निर्दोषान् सत्वान्* प्राणिनः, 'द्रव्यासुव्यवायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः । *मनुजांश्च* अत्र 'नश्छत्यप्रशान्' (पा. ८।३।७) इति नस्य सत्त्वम् । तस्य 'स्तोः श्चुनाश्चु' (पा.८।४।४०) इति शत्वम् । 'अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः' (पा. ८।३।४) इत्यनुस्वारः । *हत्वाऽवदाय श्रुतिमन्त्रपूते* वेदमन्त्रोच्चारणपावने *वह्नौ अहौषु* स्वाह्याम्बभूवुः । हुधातोर्लुङिसिच् । 'सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु' (पा. ७।२।१) इति वृद्धिः ॥ ११ ॥

ब्राह्मण वर्ग उदर परायण तथा निन्दनीय हो गया, वह लोक का उपकार करने वाले यज्ञ जैसे श्रेष्ठ कार्यों में वेचारे निर्दोष प्राणियों की तथा मनुष्य तक की भी वेदमन्त्रों द्वारा पवित्र यज्ञ की अग्नि में देने लगे ॥ ११ ॥

वाममार्गस्य प्रवृत्तिं दर्शयति—

दम्भेन गौरीशिवयोर्मदान्धा
निपीय हालां महिलासहायाः ।
समाचरन्निन्दितकर्म मात्रा
पुत्र्या भगिन्याऽपि च वामशीलाः ॥ १२ ॥

दम्भेनेति । *वामशीलाः* वाममार्गिणः *गौरीशिवयोः* पार्वत्याः शिवस्य च 'अभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति' (पा. वा. २।२।३४) गौरीशब्दस्य पूर्व-

निपातः। दम्भेन व्याजेन *महिलासहाया* योषिद्भिः सह *हालां* मद्यं। 'सुराहलिप्रियाहाला' इत्यमरः। *निपीय, मात्रा पुत्र्या भगिन्यापि* च सह *निन्दितकर्म* व्यभिचारं समाचरन्। 'मद्यं मांसं च मीनं मुद्रा मैथुनमेव च। एते पञ्चमकाराः स्युः मोक्षदा हि युगे युगे।' इति चार्वाकीयं गर्हितमतं जना अन्धा इवान्वधावन् ॥ १२ ॥

आडम्बर के कारण शिव और पार्वती के नाम पर मदान्ध वाममार्गी लोग स्त्रियों सहित शराब पीकर बहन, पुत्री और माता तक के साथ भी निन्दित आचरण करने लगे ॥ १२ ॥

अनेकदोषाकरमूर्तिपूजा-
मिथ्याप्रभावैर्निगृहीतचित्ताः ।
मूढा महिपालगणाः स्वशत्रो-
र्देवालयांस्त्रातुमलं न पूज्यान् ॥ १३ ॥

अनेकेति। *अनेकेषामविद्यादम्भव्यभिचारादीनां दोषाणाम् आकरः* उत्पत्तिस्थानम्। 'आकरो निवहोत्पत्तिस्थानश्रेष्ठेषु कथ्यते' इति मेदिनी। एवंविधाया मूर्तिपूजाया *मिथ्याप्रभावैरन्धविश्वासैः निगृहीतचित्ता* निगडित-हृदयाः तदासक्ता इत्यर्थः। पाषाणपूजाजन्याविद्यातो *मूढा महीपालगणा* राजन्यकाः महमूदगौरीप्रभृतेः *स्वशत्रोः* सोमनाथादीन् आराधनस्थान-त्वात् *पूज्यान्* देवालयाँस्त्रातुं 'नश्छव्यप्रशान्' (पा. ८।३।७) इति रुत्वम् *न अलम्* अशक्नुवम्। देवः शिवः स्वयं नः रक्षयिष्यति शत्रूँश्च पराजेष्यते किं मुधाऽऽयोधनेनेत्यन्धितधिय एव परास्ताः ॥ १३ ॥

अनेक दोषों की खान मूर्तिपूजा के झूठे प्रभाव से वशीभूत होकर किंकर्त्तव्यमूढ राजगण शत्रुओं से अपने पूज्य देवालयों की रक्षा तक भी नहीं कर सके ॥ १३ ॥

महोपकर्त्रोर्निजवन्द्यपित्रोः
प्रज्ञानदानां विदुषां गुरूणाम् ।

बुधातिथीनाञ्च विहाय पूजां
जडार्चनायां निरताऽऽर्यजातिः ॥ १४ ॥

महेति। जनयितृत्वात् पालकत्वाच्च महोपकर्त्रोः *निजवन्द्यपित्रोः* स्वपूज्यमातापित्रोः। 'पिता मात्रा' (पा. ७।१।३६) इत्येक शेषः। *प्रज्ञानदानां* प्रज्ञावतां *विदुषाम्*। 'विदेः शतुर्वसुः (पा. ७।१।३६) इति वसुः। तस्यामि परतः 'वसोः सम्प्रसारणम्' (पा. ६।४।३६) इति सम्प्रसारणम्। सम्प्रसारणाच्च (पा. ६।१।१०८) इति अकारस्य पूर्वरूपैकादेश उकार एव। तादृशां गुरूणां *बुधातिथीनां* ज्ञानवतामभ्यागतानां *पूजां विहाय*। "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव" इत्यादिस्मार्तधर्ममुल्लङ्घ्य *आर्यजातिः* भारतीयजनः *जडार्चनायां* निष्प्राणपाषाणे देवबुद्धिं कृत्वा तस्य पूजायां *निरता* संलग्ना ॥ १४ ॥

महान् उपकार करने वाले वन्दनीय माता-पिता, विद्वान् गुरु तथा ज्ञानी अतिथियों का सत्कार करना छोड़कर आर्यजाति जड़ पूजा में लग गई ॥ १४ ॥

पत्नी कथं श्रीपतिदेवभक्तिं
कुर्यान्न भर्त्ता यदि तत्सपर्याम्।
अन्योन्यसत्कारविनाशहेतो
र्न सन्ततिः सद्गुणसंस्कृता स्यात् ॥ १५ ॥

पत्नीति। *यदि भर्त्ता* पतिः *तत्सपर्याम्* पत्नीपरिचर्याम्। तत्पदेनात्र पूर्वोक्ता पत्नी परामृश्यते। *न कुर्यात्तर्हि पत्नी* अपि *कथं श्रीपतिदेवस्य भक्तिं* सेवां *कुर्यात्*। उभयत एव प्रेमतन्तुः संवर्धते नैकतः। *अन्योऽन्यस्य सत्कारविनाशहेतोः सन्ततिः सद्गुणसंस्कृता* विद्याविनयसदाचारादिगुणालङ्कृता *न स्यात्*। पितरावेव सन्ततौ सङ्क्रमेते तयोर्निर्गुणत्वे कैवाशा सन्तानस्य सगुणस्य ॥ १५ ॥

यदि पति अपनी पत्नी के सम्मान पूर्वक दृष्टि से न देखें तो पत्नी भी अपने पतिदेव की भक्ति कैसे कर सकती है? एक दूसरे पर प्रेम न रहने के कारण सद्गुणों से संस्कृत सन्तान भी कैसे हों ॥ १५ ॥

धर्मापदेशेन मतान्तराणां
प्रकल्पनां किल्विषकारिधूर्तैः ।
विधाय वित्ताहरणाय नूनं
कृतानि देवार्चनमन्दिराणि ॥ १६ ॥

धर्मेति । धर्मापदेशेन धर्ममिषेण 'व्याजो ऽपदेशो लक्ष्यं च' इत्यमरः । वेदविरुद्धानां मतान्तराणां प्रकल्पनां स्थापनां विधाय । अत्र किल्विषकारिधूर्तैः इति पदं कर्मणि अपि सत् स्वकर्तृत्वशक्त्या प्रकल्पनामित्यत्रानभिहिते कर्मणि द्वितीयाम् उत्पादयति । किल्विषकारिधूर्तैः किल्विषं पापं 'किल्विषकल्मषमि'त्यमरः । तत्कर्तुं शीलैः इति ताच्छील्ये णिनिः । तथाविधैः धूर्तैः वञ्चकैः, 'पापो धूर्तस्तु वञ्चकः' इत्यमरः । कथमन्तरा पुरुषकारेण सुखं जीविका स्यादिति वित्ताहरणाय धनामाहर्त्तुम् । नूनं निश्चये । एतदेवोद्दिश्य नान्यत् किञ्चित् इत्यर्थः । देवार्चनमन्दिराणि देवपूजास्थानानि कृतानि रचितानि । अन्तर्हित ण्यर्थः प्रयोगः ॥ १६ ॥

धर्म के बहाने पापी धूर्तों ने मिथ्यामत मतान्तरों की कल्पना की । धन अपहरण करने के लिये ही इन्होंने मन्दिरों में मूर्तिपूजा प्रारम्भ की ॥ १६ ॥

देवालयाध्यक्षाणां चारित्र्यनाशमाह—

मृगं यथेहामृग आखुमोतु-
र्यथा खगं श्येन इवैष कह्वः ।
मीनं यथा दाम्भिकपूजकोऽसौ
जग्राह जाले रमणीमणिं तु ॥ १७ ॥

मृगमिति । छलेन यथा ईहामृगः वृकः, 'कोकस्त्वीहामृगो वृकः' इत्यमरः । मृगं गृह्णाति । यथा ओतुः मार्जारः 'ओतुर्बिडालो मार्जारः' इत्यमरः । आखुमुन्दुरुं व्याजेन गृह्णाति । कह्वः बकश्च इव यथा छलेन आत्मानं ध्यानमग्नं प्रदर्श्य मीनं ग्रसति तथैव दाम्भिकपूजकः वञ्चको देवालयाध्यक्षः रमणीमणिं स्त्रीरत्नं जाले स्वपाशे जग्राह । स्त्रियः कामाखेटमकार्षीदित्यर्थः ॥ १७ ॥

जैसे भेडिया हिरण को, बिल्ली चूहे को, बाज पक्षी को, और बगुला मछली को, अपने जाल में फँसा लेता है, वैसे ही इन दम्भी पूजारियों ने स्त्रीरत्नों को अपने जाल में फँसा लिया ॥ १७ ॥

यूनामवस्थां विवृणोति—

अनेकपत्नीः परिणीय कम्रो
यूनां गणो भारतवंशजातः ।
भोगातिसंगात् स्वरगादकाण्डे
निपात्य भार्या विरहाग्निकाण्डे ॥ १८ ॥

अनेकेति । *भारतवंशजातः* भारतकुलोत्पन्नः । भरतस्येदं भारतं तस्य वंशेन सह 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' (पा.२।१।५७) इति समासः । *यूनां* तरूणानां । युवन् इत्यस्य आमि परतः 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' (पा. ६।४।१३३) इति सम्प्रसारणम् । *कम्रः* कामुकः 'नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः' (पा. २।३।१६७) इति ताच्छील्ये रप्रत्ययः । *गणः* समूहः । कामासक्तत्वाद् *अनेकपत्नीः* परिणीय उद्वाह्य *भोगातिसङ्गात्* कामाधिक्यसेवनात् । हेतौ पञ्चमी । तस्य परिणामभूतमृत्युकारणात् *भार्याः विरहाग्निकुण्डे* वियोगाग्निगर्त्ते, 'अकाण्डे अनवसरे 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवारिषु' इत्यमरः । *निपात्य स्वः* दिवम् *अगात्* । गाङ् गतौ इति धातोः लुङि रूपम् ॥ १८ ॥

भारतीय युवक कामी होकर अनेक पत्नियों से विवाह करने लगे, अत्यन्त विषयोपभोग के कारण वे युवक अकाल में ही काल के ग्रास होने लगे और अपनी स्त्रियों को वैधव्य के अग्निकुण्ड में डालने लगे ॥ १८ ॥

तासां विधवानामवस्थामाह—

अतृप्तचित्ता विषयोपभोगैः
स्वच्छन्दगास्ता विधवा विविक्ते ।
तीर्थस्थले देवगृहे मठे वा
शठैर्मठानां व्यभिचेरुरीशैः ॥ १९ ॥

अतृप्तेति। यौवनावस्थायां पतिवियोगाद् *विषयोपभोगैः* कामसेवनस्य *अतृप्तचित्ता* अनाकलिततृप्तयः। अत्र प्रकृत्यादित्वात् तृतीया द्रष्टव्या यथा शतेन गां क्रीणाति। तथा मुक्ते तु षष्ठ्येव भवति। कामस्यासौहित्यात् कुलटा इव *स्वच्छन्दगाः ताः विधवा विविक्ते* निर्जने *तीर्थस्थले* देवगृहे मठ परिव्राजकसदने वा। एतादृशि एव स्थानानि जनानां प्राप्तविश्वासत्वात् रहस्स्थितत्वाच्चानिवारितपापाचरणोपयुक्तानि। मठानां देवालयानां लिङ्गवृत्तिपरिव्राजकानां सदनानां चेशैः स्वामिभिः *सह व्यभिचेरुः* ॥ १९ ॥

विषयों के उपभोग से अतृप्त चित्तवाली ये विधवायें उच्छृङ्खल हो गईं और एकान्त में, तीर्थों में, मन्दिरों में और मठों में धूर्त मठाधीशों के साथ व्यभिचार करने लगीं ॥ १९ ॥

देवदासीनां दशामाह—

श्रद्धालुभिर्मूढजनैः स्वकन्या
देवालये देववराय दत्ता।
श्रीदेवदास्यः कृतगीतलास्या
बलादभुज्यन्त विटैरजस्रम् ॥ २० ॥

श्रद्धालुभिरिति। श्रदुपपदे धा धातोः 'आतश्चोपसर्गे' (पा. ३।३।१०६) इति कप्रत्ययः। श्रच्छब्दस्योपसर्गत्वं तु 'श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः' (पा. वा. ३।३।१०६) इति वार्तिकेन विज्ञेयम्। *श्रद्धा* आदरः। 'श्रद्धाऽऽदरे काङ्क्षायामि'ति मेदिनि। ततस्ताच्छील्ये 'स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्' (पा. ३।२।१५८) इत्यनेन आलुच् प्रत्ययः। पूजकान् प्रत्यादरबुद्धिभिः किन्तु *मूढैस्तद्वञ्चनानभिज्ञैः* पितृभिः *स्वकन्या देवालये देववराय* मन्दिरस्य देवतायै *दत्ता* उपहारीकृताः। भारते विशेषतः दाक्षिणात्या निजप्रथमजाः कन्या मन्दिरेषु देवसेवायै उपहारीकुर्वन्ति। इयं प्रथा अद्यापि तत्र प्रचलति। ताश्च *देवदास्यः* देवोपहारीभूताः सेविकाः कन्या मन्दिरेषु देवतायै *कृतगीतलास्या* नृत्यगीतवादित्रादिभिर्विहितलीलाः *विटैः* वञ्चकपूजकैः *बलात्* प्रसह्य *अजस्रं* निरन्तरमभुज्यन्त कामविषयीकृताः ॥ २० ॥

श्रद्धालु किन्तु मूढलोग अपनी कन्याओं को मन्दिरों में देवों की भेंट चढ़ाने लगे। नाच गाना द्वारा मनोरञ्जन करने वाली इन देवदासियों के साथ धूर्त लोग (पूजारी आदि) बलात्कार करने लगे ॥ २० ॥

परात्मकल्याणधनप्रसूतिं
विहाय दैवीं विमलां प्रवृत्तिम् ।
जना महाक्लेशदयोनिहेतुं
तमोमयीं वृत्तिमशिश्रियंस्ते ॥ २१ ॥

परेति । *परात्मकल्याणधनप्रसूतिं* परस्यात्मनश्च कल्याणरूपं धनं प्रसूते या तादृशी *विमलां* तमोरहितां सत्त्वमयीं दैवीं दिव्यां *प्रवृत्तिं विहाय जना महाक्लेशानां दाम्या योनेः* उत्पत्तेः *हेतुः* कारणभूतां *तमोमयीमविद्याबहुलां वृत्तिं* मनोव्यापारम् *आशिश्रियन्* आश्रितवन्तः । श्रिञ् धातोर्ण्यन्तात् 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ्' (पा. ३।४।४८) इति चङि द्वित्वम् ॥ २१ ॥

अपने और परायों के लिये कल्याण-सम्पदा उत्पन्न करने वाली निर्मल दैवी प्रवृत्ति को छोड़कर वे भारतीय लोग महान् क्लेशदायक तमोगुणमयी वृत्तियों का आश्रय लेने लगे ॥ २१ ॥

रूढिं गताऽनर्थकरी कुरीति-
र्निशाचरीवार्यजने चरिष्णुः ।
भद्रान्मनुष्यानपि पीडयन्ती
स्वराज्यमस्थापयदज्ञवृन्दे ॥ २२ ॥

रूढिमिति । *अनर्थकरी* विनाशकारी । 'हेतौ' (पा. ३।२।२०) टप्रत्ययः, 'ठिड्ढाणञ्' (४।१।१५) इत्यादिना ङीप् । *कुरीतिः* अस्पृश्यतापाषाणपूजा-जनुषावर्णव्यवस्थादयः गर्हितप्रथाः । 'कुगतिप्रादयः' (पा. २।२।१८) इति समासः, सरूपत्वादेकशेषः (पा. १।२।६४) । *निशाचरीव* राक्षसीव विध्वंसकारिणी *आर्यजने* भारतीयेषु *चरिष्णुः* प्रचरणशीला । ताच्छील्ये (प. ३।२।१३६) इष्णुच् प्रत्ययः । रूढिगतां दृढमूला जाता । सा कुरीतिः *भद्रान्* श्रेष्ठानपि *मनुष्यान्* जनान् *पीडयन्ति* तुदन्ती । शत्रन्ताद् 'ऊगितश्च'

(पा. ४।१।६) इतिङीप्, 'शप्श्यनोर्नित्यम्' (पा. ७।१।८१) इति नुम्। अज्ञवृन्दे मूर्खसमाजे स्वराज्यं स्वाधिपत्यमस्थापयत्। अज्ञा कुरीतीः प्राणपणेनान्वकार्षुरित्यर्थः। 'कुरी कुरीतिः', 'चरी चरिष्णुः' इत्यत्रानुप्रासः॥ २२॥

अनर्थ करने वाली कुरीति प्रचलित हो गई, और आर्य लोगों में निशाचरी राक्षसी के समान विचरण करने लगी। भद्र पुरुषों को इससे पीड़ा होने लगी। इस (कुरीति) ने अज्ञानियों में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया॥ २२॥

अचेतने वारि तरौ कृशानौ
समीरणे ग्रावणि तिग्मभानौ।
प्रेते च मर्त्ये मतिहीनजन्तौ
देवत्वबुद्ध्या मनुजा विनष्टाः॥ २३॥

अचेतने इति। अचेतने जडे वारि जले। वार् इति शब्दस्य ङौ रूपम्। 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्' इत्यमरः। तरौ वृक्षे कृशानौ वह्नौ समीरणे वायौ ग्रावणि पाषाणे तिग्मभानौ सूर्ये प्रेते मृते मर्त्ये कस्मिंश्चित् कल्पितावतारे मनुजे मतिहीनजन्तौ बुद्धिहीनपशौ च देवत्वबुद्ध्या कृतदेवधियोः मनुजा विनष्टा सत्यपथाद् भ्रष्टाः महाक्लेशाँश्चापुः॥ २३॥

पानी, वृक्ष, अग्नि, वायु, पत्थर, सूर्य आदि जड़ पदार्थों तथा भूतप्रेत एवं बुद्धिहीन पशुओं के प्रति देवता की मान्यता से मनुष्य नष्ट हो गये॥ २३॥

युधिष्ठिरानन्तरमार्यजातेः
साम्राज्यसूर्योऽम्बरमध्यदेशात्।
दुर्दैवतः क्षीणमहाः क्रमेण
प्रारब्ध गन्तुं हरितं प्रतीचीम्॥ २४॥

युधिष्ठिरेति। युधिष्ठिरानन्तरं महाराजस्य युधिष्ठिरस्य पश्चात् आर्यजातेः साम्राज्यसूर्यो वैभवरविः दुर्दैवतः दुर्भाग्यात् हेतोः क्रमेण क्षीणमहाः

ह्रसिततेजा *अम्बरमध्यदेशात्* उन्नायप्रान्तात् *प्रतीचीं* पश्चिमां *हरितं* दिशां। 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः। अवनायं *गन्तुं* प्राप्तुं प्रारब्ध रम् धातोर्लुङि सिच्। अनिट्त्वात् सिचो 'झलो झलि' (पा. ८।२।२६) इति लोपः। 'झषस्तथोर्धोऽधः'(पा. ८।२।४०) इति तप्रत्ययस्य धः। 'झलां जश् झशि' (पा. ८।४।५३) इति भकारस्य बत्वम् ॥ २४ ॥

महाराज युधिष्ठिर के बाद दुर्भाग्य से धीरे-धीरे प्रचण्ड साम्राज्य सूर्य अपने तेज से क्षीण होता हुआ पश्चिम दिशा की ओर (अस्त होने के लिये) ढलने लगा ॥ २४ ॥

देशद्रुहां कृत्यं वर्णयति—

भूखण्डपिण्डस्थकृते कृतघ्नै-
वैरायमाणैर्जयचन्द्रतुल्यैः ।
आच्छिद्य राज्यं निजबन्धुहस्तात्
पाणौ प्रदत्तं यवनेश्वराणाम् ॥ २५ ॥

भू० इति। *भूखण्डपिण्डस्य* भारतैकप्रान्तस्य। भुवः खण्डः एकदेशः भारतम् तस्यापि पिण्ड एकदेशः लघुप्रान्तभागो भूखण्डपिण्डः, 'पिण्डो बोले बले सान्द्रे देहागारैकदेशयोः' इति मेदिनी। कृते तदर्थे कृतघ्नैः उपकारघातिभिः। मनुष्यकर्तृकत्वाट्टकिनिषिद्धे मूलविभूजादित्वात् क प्रत्ययः। वैरायमाणैः वैरं कुर्वद्भिः 'शब्द वैरकलह०' (पा. ३।१।१७) इत्यादिना करणे क्यङ्। अथवा वैरीवाचरद्भिः उपमानादीचारे (३।१।१०) इति क्यङ्। वाचकलुप्तोमा। तच्चोक्तं साहित्यदर्पणे—

"औपम्यवाचिनो लोपे समासे क्विपि च द्विधा।" *जयचन्द्रतुल्यैः* राजभिः *निजबन्धुहस्तात्* पृथ्वीराजात् *राज्यमाच्छिद्य यवनेश्वराणां* महमूदगौरीप्रभृतीनां यवनराजानां *पाणौ* प्रदत्तम् समर्पितम् ॥ २५ ॥

जमीन के टुकड़े के लिये कृतघ्न जयचन्द जैसे राजाओं ने अपने भाइयों से वैर करके, उनके हाथ से राजपाट छीनकर मुसलमान बादशाहों को सौंप दिया॥२५॥

राज्ञां दशामाह—

ऐश्वर्यसञ्जात विलासितायां
पञ्चेन्द्रियाणां विषयातिसङ्गात् ।
प्रमादमद्यं परिपीय भूपा
राज्येन साकं यशसापि हीनाः ॥ २६ ॥

ऐश्वर्येति । *ऐश्वर्यसञ्जातविलासितायां* प्रचुरवैभवकृतभोग प्रवृत्तौ सत्यां *पञ्चेन्द्रियाणां* घ्राणरसनाचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणां विषयातिसङ्गात् गन्धरसरूप-स्पर्शशब्दानामतिसेवनात् *प्रमादमद्यं* विषयसेवनसंवर्धितालसमदिरां *परिपीय भूपाः* शक्तिहीनत्वाद्राज्येन *साकं यशसापि हीनाः* । विषयिणः प्रमादिनश्च राजानः राज्यं यशश्च सममेव अपाहारिषत । सहोक्तिरलङ्कारः । तल्लक्षणं च यथा—'सा सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत्' इति ॥२६॥

भारतीय राजा ऐश्वर्यजन्य भोगविलास में फँस गये । रात दिन इन्द्रियों को तृप्त करने के लिये विषय भोग में लग्न रहते थे । इसी कारण प्रमादरूपी मदिरा पी कर राज्य से वञ्चित होने के साथ ही साथ यश भी गँवा बैठे ॥ २६ ॥

परस्परेर्ष्येन्धनघर्षणोत्थ-
द्वेषाग्निदग्धामलहार्दभावैः ।
मदान्धधीभिर्यवनाधिपानाम्
अङ्गीकृता किङ्करता नरेन्द्रैः ॥ २७ ॥

परस्परेति । *परस्परस्यान्योऽन्यस्य* । 'कर्म व्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत् इति वक्तव्यम्, समासवच्च बहुल' (पा. वा. ८।१।१२) मिति समासाभावपक्षे द्वित्वे पूर्वपदस्य सोः विसर्जनीयस्य 'कस्कादित्वात्' (८।३।४८) संकारः । *ईर्ष्या एव इन्धनं तद्घर्षणजन्येन द्वेषाग्निना दग्धा या अमला* विशुद्धा रागद्वेषहीना हृदिभवा भावा येषां तैः द्वेषदग्धमानसैः । अतः एव विवेकशून्यत्वाद् विषयित्वाच्च *मदान्धधीभिः* मानसिंहादिभिः *नरेन्द्रैः यवनाधिपानामकबरादीनां किङ्करता* दासता । कृञ् धातोरानुलोम्ये

(पा. ३।२।२०) टप्रत्ययः ततश्च 'भावे' (पा. ५।१।११९) तल्। *अङ्गीकृता* स्वीकृता ॥ २७ ॥

राजाओं के पारस्परिक ईर्ष्यारूपी ईन्धन के घर्षण से पैदा हुई द्वेषरूपी अग्नि से (एक दूसरे के प्रति) पवित्र हृदय की सद्भावना जल गई (प्रीति समाप्त हो गई)। इसी कारण इन राजाओं की बुद्धि भ्रष्ट हो गई और उन्होंने मुसलमान बादशाहों की दासता स्वीकार कर ली ॥ २७ ॥

प्रतापसिंहप्रतापं विवृणोति—

मेवाडराष्ट्रावनिराजहंसः
क्षत्रावतंसो रविवंशदीपः ।
प्रतापशाली समभूत् प्रतापः
स्वातन्त्र्यसिद्ध्यै सहितातितापः ॥ २८ ॥

मेवाडेति । *मेवाडराष्ट्रस्य* तन्नाम्नो देशस्य *अवनेः* भूमे *राजहंसः* नरशिरःशेखरः *क्षत्रावतंसः* क्षत्रियभूषणः, 'अवतंसो न स्त्रियां स्यात् कर्णपूरे च शेखरे' इति मेदिनी । *रविवंशदीपः* सूर्यकुलप्रदीपः *प्रतापसिंहः स्वतन्त्र्यसिद्ध्यै* मेवाडभूमिं यवनाधिपत्याद् मुमोचयिषुः । *सहितातितापः* 'तीषसहलुभरुषरीषः' (पा. ७।२।४८) इति सहतेरिट्। विपुलसङ्कट सङ्कुलः अभूत् । तापपदांशस्य पादान्त्ये सति अन्त्यानुप्रासोऽत्र ॥ २८ ॥

(ऐसे समय में) मारवाड़ राष्ट्र की भूमि में क्षत्रियकुल भूषण, सूर्यवंश का दीपक, प्रतापशाली महाराणा प्रतापसिंह उत्पन्न हुये जिन्होंने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये विपत्तियों की पराकाष्ठा को भी सहन किया ॥ २८ ॥

अकब्बराख्यो यवनाधिराजो
वशंवदं यं प्रविधातुमैच्छत् ।
छलैर्वने भिल्लसखं भ्रमन्तं
तथापि निघ्नो न हि तस्य जातः ॥ २९ ॥

अकब्बरेति । *यं* प्रतापसिंहम् *अकब्बाराख्यः* अकबरनामा *यवनाधिराजः* कर्मधारयः षष्ठीतत्पुरुषो वात्र समासो ज्ञेयः । 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' (पा. ५।४।९१) इति टच् प्रत्ययः । *भिल्लसखं* भिल्लसहायम् । भील इति प्रसिद्धा विशेषजातिः । 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' (पा. ५।४।९१) इति समासान्तष्टच् प्रत्ययः । *वने भ्रमन्तं छलैः* छद्माचारैः *वशंवदं* वशंगम् । 'प्रियवशेवदः खच्' (पा. ३।२।३८) इति खच् प्रत्ययः । *प्रविधातुं कर्त्तुमैच्छत्* इष्ट । इषु इच्छायामितिधातोर्लङि, 'इषुगमियमां छः' (पा. ७।३।७७) इति षकारस्य छादेशः । 'आडजादीनाम्' (पा. ६।४।७२) इत्याट् । 'आटश्च' (पा. ६।१।९०) इति वृद्धिः । *तथापि हि तस्य अकबरस्य निम्नः* आयत्तोऽधीनो न *जातः* संवृत्तः ॥ २९ ॥

जङ्गलों में भीलों के साथ भटकने वाले इस प्रतिज्ञापालक महाराणा प्रतापसिंह को मुसलमान सम्राट् अकबर ने अनेक छल-बल से अपने अधीन करना चाहा, किन्तु ये उसके भी वश में नहीं आये ॥ २९ ॥

आपञ्चविंशाब्दमयं वनान्ते
सापत्यभार्यः सहमान आर्यः ।
अनन्तकष्टं न जहौ स्वधैर्यं
प्रवातनिष्कम्प इवाचलेन्द्रः ॥ ३० ॥

आपञ्चविंशाब्दम् अभिविधौ 'आङ्मर्यादाभिविध्यो–' (पा. २।१।१३) रिति समासः । *वनान्ते* वनप्रदेशे *सापत्यभार्यः* । अपत्यैः भार्यया च सह । 'वोपसर्जनस्य' (पा. ६।३।८२) इति सहस्य सादेशः । *अनन्तकष्टं सहमानः अयं आर्यः* श्रेष्ठः प्रतापसिंहः *प्रवातेन निष्कम्पोऽनेजयः अचलेन्द्रः* हिमालय इव *स्वधैर्यं* स्वदेशस्वातन्त्र्यकृते निश्चयमाशां च न *जहौ* तत्याज । 'ओहाक् त्यागे' इति धातोर्लिटि 'आत औ णलः' (पा. ७।१।३४) इति औत्वम् । आर्य-धैर्यपदयोरन्त्यानुप्रासः ॥ ३० ॥

पचीस वर्ष तक अपने बच्चे और पत्नी सहित इस श्रेष्ठ महाराणा ने अनेक कष्टों को सहन किया किन्तु आँधी में जैसे हिमालय निश्चल रहता है वैसे ही इन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा ॥ ३० ॥

दुःशासनान्मौगलवंशजानां
दिल्लीश्वराणां छलनापराणाम् ।
यज्ञोपवीताहरणं द्विजानां
कन्यापहारः परितः प्रवृत्तः ॥ ३१ ॥

मोगलवंशजानां मुगल इति नाम्ना लोके प्रसिद्धे वंशे जातानां यवनानां *दिल्लीश्वराणां* दिल्लीराजधानीमधितिष्ठतां भारतं शासतां *छलनापराणां* कपटकारिणां *दुःशासनात्* । धर्मेण वर्धते राज्यमिति कामन्दकानुसारेण अधर्मासक्तानां तेषां राज्यविप्लवात् *द्विजानां* त्रैवर्णिकानाम् । 'द्विजः स्याद् ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यदन्ताण्डजेषु' इति मेदिनी। *यज्ञोपवीताहरणं कन्यापहारः* । अत्रापहारे 'ऋदोरप्' (३।३।५७) इत्यपि प्राप्ते 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (पा. ३।३।११३) इति बाहुलकाद् घञ्प्रत्ययः । *परितः* सर्वतः *प्रवृत्तः* प्रारब्धः ॥ ३१ ॥

मुगलवंश में पैदा होने वाले दिल्ली के प्रशासक छलकपट की नीति में परायण मुसलमान बादशाहों (औरङ्गजेब आदि) के बुरे शासन से भारत में सर्वत्र द्विजों (हिन्दुओं) के यज्ञोपवीत उतारे जाने लगे और हिन्दु लड़कियों का अपहरण होने लगा ॥ ३१ ॥

बाल्ये वयस्येव विवहिता हा
द्विजैः स्वकन्या अतिकोमलाङ्ग्यः ।
नालं मुखाम्भोजमपावरीतुं
भयेन नार्यो रजनीचरेभ्यः ॥ ३२ ॥

यवनानामपहरणभयाद् *द्विजैः अतिकोमलाङ्ग्यः* मृदुगात्राः । अतिकोमलानि अङ्गान्यासां 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्' (पा. ४।१।५२) इति ङीप् प्रत्ययः । *स्वकन्या बाल्ये वयसि* शैशव एव *विवाहिताः* । *हा* ! हा खेदे 'हा विषादशुगतिषु' इत्यमरः । *नार्यः* कुलाङ्गनाः *रजनीचरेभ्यः* कामित्वाद् रक्षःकल्पेभ्यः यवनेभ्यः *भयेन मुखाम्भोजं* वदनारविन्दमपावरीतुं अनावृत्तं कर्तुम् । 'वृतोवा' (पा. ७।२।३८) इति इटोदीर्घः । *नालं* नो प्राभवन् । पटेन

मुखाच्छादन प्रथापि यवनहंतकानामेव बलात्कारभयात् प्रचलिता नारीषु यतो हि ते मुखदर्शं साहसिकं समाचरन् ॥ ३२ ॥

खेद ! हिन्दुओं की कोमलाङ्गी कुमारियाँ इन दुष्टों के भय से बाल्यकाल में ही व्याही जाने लगीं और इन्हीं राक्षसों के भय से हिन्दु महिलाओं में पर्दाप्रथा प्रचलित हुई ॥ ३२ ॥

महीसुरानामतुलं महस्तद्
राजन्यतेजोऽपि नितान्तनष्टम् ।
दशा विशां द्रव्यवतामवर्ण्या
क्षुद्रस्स शूद्रस्तु भयाद् रिपूणाम् ॥ ३३ ॥

महीसुराणां ब्राह्मणानां तत्पूर्वार्जितमतुलं *महस्तेजः* । 'महस्तूत्सवतेजसोः' इत्यमरः । *राजन्यतेजः* क्षत्रियतेजोऽपि, 'राजश्वसुराद्यत्' (पा. ४।२।३६).'राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम्' इत्यपत्यजातौ यत्प्रत्ययः । *नितान्तं* सर्वथा *नष्टम्* । *द्रव्यवतां* धनिनां *विशां* वैश्यानां *दशाऽपि अवर्ण्या* धनहीनत्वाद् वर्णयितुमशक्या । अमीषां त्रैवर्णिकानां सेवकः सः वराकः शूद्रस्तु *रिपूणां* यवनानां *भयात् क्षुद्रः* तुच्छ एव । किमिव तद्विषये वक्तव्यं यदा द्विजा एव दुर्दशाग्रस्ताः ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणों का अनुपम ब्रह्मवर्चस तेज नष्ट हो गया । क्षत्रियों का क्षात्र तेज भी क्षीण हो गया । धनिक वैश्यों की दशा शोचनीय हो गई, विचारे शूद्रों की तो बात ही क्या ? ॥ ३३ ॥

संसर्गदोषात्पिशिताशनानां
मैरेयपानं मतिनाशनं तत् ।
दुरोदरं स्त्रीमृगयातिसङ्गो
मांसाशनं चार्यजनेषु वृद्धम् ॥ ३४ ॥

पिशिताशनानां मांसाशिनां यवनानां *संसर्गदोषात्* । संसर्गजन्यदोषात् । 'शाकपार्थिवादित्वात्' (पा. वा. २।६।६०) मध्यपदलोपिसमासः । तत् शास्त्रविगर्हितं 'वर्जयेन्मधुमांसं चे' ति स्मृतिः । *मतिनाशनं* मति-

नोश्यतेऽनेन 'करणाधिकरणयोश्चे'ति (पा. ३।३।११७) करणे ल्युट् प्रत्ययः। मैरेयपानं सुरापानं दुरोदरं द्यूतम्। 'पणे द्यूते दुरोदरम्' इत्यमरः। स्त्रीमृगयातिसङ्गः स्त्र्यतिसङ्गो मृगयातिसङ्गश्च। मांसाशनंचार्यजनेषु भारतीयेषु वृद्धम्। दीपकालङ्कारः, तल्लक्षणं यथा काव्यालङ्कारसूत्रे, अनुषङ्गत उपमानोपमेयवाक्येष्वेका क्रिया दीपकम् (१०।१८)॥ ३४॥

इन मांसाहारी म्लेच्छों के संसर्गदोष से भारतीयों में बुद्धिनाशक मदिरापान, जुआ, वेश्यागमन, शिकार और मांसाहार के दोष खूब बढ़े॥ ३४॥

आर्यापकर्षावधिचित्रदृश्यं
प्रहर्षभिद् भारतवर्षमेतद्।
विलोक्य विश्वेश्वरमानसान्तात्
कारुण्यगङ्गास्रवदच्छधारा॥ ३५॥

आर्यापकर्षावधिचित्रदृश्यम्। आर्याणामपकर्षः अवनायः तस्यावधिः सीमा तस्य चित्राणि विविधवर्णानि दृश्यानि यत्र तत् प्रहर्षभिद् हर्षापलोपकमेतद् भारतवर्षं विलोक्य विश्वेश्वरमानसान्तात् ब्रह्मणः हृदयात्। ब्रह्मणो निराकारत्वेऽपि भारतदुर्दशाया उत्कर्षद्योतनाय तस्मिन् मानसधर्मारोप्य तस्य करुणाप्रवाहः सूच्यते। अच्छधारा विमलप्रवाहा 'त्रिष्वागाघात् प्रसन्नोऽच्छः' इत्यमरः। कारूण्यगङ्गाऽस्रवत्। ब्रह्मापि करुणाकुलोऽरोदीदित्यर्थः॥ ३५॥

भारतवर्ष में आर्यों की अवनति की पराकाष्ठा के भयानक दृश्य को देखकर प्रभु के मानस से करुणा की विमलधारा बह निकली॥ ३५॥

धर्मान्धतायामुपलब्धकीर्त्तौ
महोग्रमूर्तावबरङ्गजीवे।
गोवेदधर्मद्विजकर्मघातो
वृद्धिं गत शासति नः प्रदेशम्॥ ३६॥

धर्मान्धतायां यवनमतग्रहग्रहिलायामुपलब्धकीर्त्तौ प्राप्तख्यातौ। यवनमतान्ध इति ख्यातिं गते महोग्रमूर्त्तौ भयङ्कराकृतौ अबरङ्गजीवे 'औरङ्गजेब'

इति लोक प्रसिद्धे यवनराजे नः अस्माकं प्रदेशं शासति सति गोवेद-धर्मद्विजकर्मघातः गोवधः वेदहत्या धर्मत्यागः ब्रह्महत्या कर्मलोपश्च वृद्धि-गतः। यवनराजो वैदिकान् सर्वतोऽनीनशद् इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

भयङ्कर क्रोध की मूर्ति औरङ्गजेब, जिसने धर्मान्धता में कीर्ति प्राप्त की थी, जब हमारे देश पर शासन कर रहा था तो उस समय गौ, वैदिक धर्म तथा ब्राह्मणों का हनन बहुत अधिक बढ़ गया ॥ ३६ ॥

मोहम्मदानां मदमर्दनार्थं
गोवेदविप्रप्रतिपालनाय ।
तदा महाराष्ट्रमहीमहेन्द्रो
जनिं गतः श्री शिवराजवीरः ॥ ३७ ॥

मोहम्मदानां यवनानां मदमर्दनार्थं गर्वचूर्णनाय गवां वेदानां विप्राणां च प्रतिपालनाय रक्षणाय महाराष्ट्रमहीमहेन्द्रः महाराष्ट्रभूराजः। 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्मावनिर्मेदिनीमही' इत्यमरः। श्रीशिवराजवीरः सप्तदश-तमशताब्द्यां जनिगतः उत्पन्नः ॥ ३७ ॥

तब ऐसे समय में मुसलमानों का अभिमान चकनाचूर करने के लिये, गौ, वेद और ब्राह्मणों की रक्षा के लिये महाराष्ट्रकेसरी वीर शिवाजी पैदा हुये ॥ ३७ ॥

विनाश्य दिल्लीश्वरदुष्टनीतिं
सूत्रं पवित्रं शुभयज्ञलिङ्गम् ।
शिखां शिरोभूषणमार्यचिह्नं
जुगोप यो गोप इवार्य-धर्मम् ॥ ३८ ॥

दिल्लीश्वरस्य अवरङ्गजीवस्य दुष्टनीतिं वेदविरुद्धसाम्प्रदायिकनीतिं विनाश्य यः शिवराजः। शुभयज्ञलिङ्गं श्रेष्ठयज्ञकर्मणि अधिकारकम्। 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मेति' शतपथब्राह्मणम्। अतः एव पवित्रं पावनं सूत्रं यज्ञो-पवीतं शिरोभूषणं शिरःशोभां आर्यचिह्नमार्याणां चिह्नभूतां शिखाम् 'चूडाकर्म-द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुति-चोदनात्,

इति मनुः। यः गोपः इव गोरक्षक भूरक्षकोवेदक्षकश्च शिवः। गां पति 'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा. ३।२।३) इति कः प्रत्ययः। 'गौः स्वर्गे च बलीवर्दे रश्मौ च कुलीशे पुमान्। स्त्री सौरमेयी हा बाणदिग्वाग्भूष्वप्सु भूम्नि च' इति मेदिनी। जुगोप ररक्ष ॥ ३८ ॥

इसी (शिवाजी) ने भारत में दिल्ली के बादशाह (औरङ्गजेब) की दुष्ट नीति का दलन करके आर्यों के शुभ यज्ञ के चिह्न यज्ञोपवीत और शिर के भूषण शिखा और वैदिक धर्म (हिन्दु धर्म) की रक्षा ऐसे ही की जैसे गोप (गौवों की) रक्षा करता है ॥ ३८ ॥

स्वशौर्यसन्त्रासितशत्रुसैन्यं
यं राज्यसंस्थापनलब्धकीर्तिम्।
कृपाणधाराजलधौतकाया
साम्राज्यलक्ष्मीः पुनरालिलिङ्ग ॥ ३९ ॥

स्वशौर्यसन्त्रासितशत्रुसैन्यं स्वशौर्येण संत्रासितं शत्रूणा सैन्यं सैनिका येन। 'सेनाया वा' (पा. ४।४।३५) इति ष्यञ्प्रत्ययः। *राज्यसंस्थापनलब्ध-कीर्तिम्*। ततः पूर्वं ध्वंसितस्य महाराष्ट्रराजस्य पुनः संस्थापने लब्धा कीर्तिर्येण। 'निष्ठा' (पा. २।२ ३६) इति सूत्रेण लब्धपदस्य पूर्वनिपातः। तादृशं यं शिवराजम्। *कृपाणधाराजलधौतकाया*। कृपाणस्य धारा एव जलं तेनधौता उज्ज्वलीकृता काया यस्य शिवराजशौर्यप्रभासिता *राज्यलक्ष्मी* राज्यश्रीः *पुनर् आलिलिङ्ग* प्राप ॥ ३९ ॥

इस वीर ने अपनी शूरता से शत्रु सेना में त्रास फैला दिया, फिर से हिन्दु साम्राज्य की स्थापना करके कीर्ति प्राप्त की। मानो तलवार की धारा के गङ्गाजल से पवित्र होकर साम्राज्य लक्ष्मी ने इस (वीर पति) का आलिङ्गन किया हो॥३९॥

श्रीरामभक्तो व्रतिरामदासः
स्वामीसमर्थो नृपनीतिदक्षः।
सदा स्वराष्ट्राभ्युदयोपदेष्टा
महान् गुरुर्यस्य बभूव धीमान् ॥ ३९ ॥

श्रीरामभक्तः श्रीरामे श्रद्धालुः *नृपनीतिदक्षः* राजनीतिपटुः *व्रतिरामदासः* ब्रह्मचारिरामदासनामा स्वामी परिव्राट् *समर्थ इत्युपाह्वः सदास्वराष्ट्रस्य अभ्युदयस्य उन्नतेरुपदेष्टा धीमान् यस्य शिवस्य महान् गुरुर्बभूव* । भूधातोर्लिटि "भुवो वुक् लुङ्लिटोः (पा. ६।४।८८)" इति वुगागमः । समर्थगुरुरामदासोऽपि यवनराज्यमसहमानः शिवं राजनीतिमन्वशात् ॥ ४० ॥

इनके (शिवाजी के) महान् तथा बुद्धिमान् गुरु समर्थ रामदास स्वामी थे, जो ब्रह्मचारी तथा राम के भक्त थे। ये राजनीति में निपुण थे और सदा राष्ट्र की उन्नति के कार्यों का उपदेश (शिवाजी को) देते रहते थे ॥ ४० ॥

ततेः समन्ताद्यवनाधिपत्ये
श्रीसूरदेवौ तुलसीकवीरौ ।
साधू तुकाराममुखा बभूवुः
सन्तः कवीन्द्रा इह देशभक्ता ॥ ४१ ॥

समन्तात् परितः *यवनाधिपत्ये* यवनराज्ये अधिपतिशब्दस्य ब्राह्मणादित्वात् 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (पा. ५।१ १२४)' इति भावे ष्यञ् प्रत्ययः। *ततेः* प्रसारं प्राप्ते 'यस्य च भावेन भावलक्षणम् (पा. २।३।३७)' इति सप्तमी। *इह* भारते *श्रीसूरदेवौ* सूरदासकेसवदेवौ *सन्तौ साधू तुलसीकबीरौ* एतन्नामानौमहात्मानौ *तुकाराममुखाः* तुकारामादयश्च *सन्तः* श्रेष्ठा *देशभक्ताः कवीन्द्रा बभूवुः* । ते हि देशभक्तिपूर्णकविताभिर्भारतीयानबूबुधन् ॥ ४१ ॥

जब यवनों (मुगलों) का साम्राज्य भारत में फैला हुआ था तब तुलसी, सूर, और तुकाराम जैसे ईश्वर भक्त सन्त कवि हुये ॥ ४१ ॥

आदर्शदेवोत्तमपुण्यवृत्तं
वर्णाश्रमाचारवृषं दिशन्तः ।
स्वकाव्यरत्नैरुपकारिणो ये
निजार्यधर्मं प्रलयाद् ररक्षुः ॥ ४२ ॥

आदर्शदेवोत्तमपुण्यवृत्तम् आदर्शा ये देवा रामकृष्णादयः मर्यादापुरुषाः तेषाम् उत्तमं पुण्यं च वृत्तं यस्मिँस्तादृशं *वर्णाश्रमाचारवृषं* ब्राह्मक्षत्रियविट्-शूद्राणां वर्णानां ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासिनामाश्रमाणाम् आचाराणां सदाचाराणां च वृषं धर्मं। 'वृषो हि भगवान् धर्मः' इति मनुः। *स्वकाव्य-रत्नैः* रामचरितमानसप्रभृतिहिन्दीभाषाकाव्यैर्दिशन्तः प्रचारयन्तः ये तुलसीप्रभृतयः *उपकारिणो* देशहितकर्त्तारः *निजार्यधर्मं* वैदिकधर्मं *प्रलयाद् विनाशाद् ररक्षुः*। 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' (पा. १।४।२५) इत्यपादानम् ।४२।

(राम कृष्ण आदि) आदर्शपुरुषों के पवित्र चरित्र को तथा वर्णाश्रम के आचार-धर्म का अपने उत्तम काव्यों द्वारा इन उपकारी सन्तों ने उपदेश किया और अपने आर्यधर्म को नष्ट होने से बचाया ॥ ४२ ॥

राज्यलुब्धानां भारतीयराजानां दशामाहः—

स्वराज्यतृष्णाजलसिक्तमूला-
दनैक्यबीजादुपजातशाखम् ।
विपत्फलाढ्यं कलहद्रुमं तं
पुनः सिषेवे नृपपक्षिवृत्तम् ॥ ४३ ॥

स्वराज्येति। *स्वराज्यतृष्णाजलसिक्तमूलाद्* स्वराज्यस्य तृष्णा एव जलं तेन सिक्तं मूलं यस्य तादृशाद् *अनैक्यबीजात्* मिथोद्वेषबीजात् *उपजात-शाखं* प्ररूढकाण्डं *विपत्फलाढ्यं* सङ्कटपरिपाकं पूर्वं जयचन्द्रादिभिः सेवितं तं पुराणं *कलहद्रुमं नृपपक्षिवृन्दं* तात्कालिकभूपजातं *पुनः सिषेवे*। परम्परित-रूपकालङ्कारः ॥। ४३ ॥

तत्पश्चात् भारत के राजारूपी पक्षियों के समूह ने पारस्परिक झगड़ों के बात का सेवन किया, जिस वृक्ष की उत्पत्ति फूट के बीज से हुई थी, जिसकी जड़ें अपने-अपने राज्यखण्ड की तृष्णा के पानी से सींची गई थीं, जो अनेक शाखाओं के रूप में बढ़ा और जिस पर विपत्ति के फल लगे ॥ ४३ ॥

कथं ते राजानो लोभेन आङ्गलैर्वशी कृता इत्याह—

स्वराज्यखण्डानिव तण्डुलाँस्ते
प्रसार्यभोग्यग्रहणाय लोलान् ।

नृपान् पतङ्गान्निजकूटयन्त्रे
व्याधा इवाङ्गला जगृहुर्नयज्ञा ॥ ४४ ॥

स्वराज्येति । राज्यलुब्धांस्तान् पाशीकर्त्तुं *स्वराज्यखण्डान्* तण्डुलान् ओदनकणानिव *प्रसार्य* विकीर्य *भोग्यग्रहणाय* भोक्तुं योग्यं राज्यं ग्रहीतुम् । अत्र राज्यस्यानभ्यवहार्यत्वात् 'भोज्यं भक्ष्ये' (पा. ७।२।६९) इति कुत्वभावः । *लोलान्* सतृष्णान् औत्सुक्यवतो *नृपान् पतङ्गानिव नयज्ञा* नीतिनिष्णाता *आङ्गला व्याधा इव निजकूटयन्त्रे* कुटिलषड्यन्त्रे *जगृहुः* पाशीकृतवन्तः ॥ ४४ ॥

जैसे व्याध चावलों को बखेर कर लोभी पक्षियों को अपने जाल में फंसा लेता है वैसे ही कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने राज्य के छोटे-छोटे टुकड़ों का लोभ देकर इन राजाओं को अपने कपट जाल में फंसा लिया ॥ ४४ ॥

अराजकत्वादखिले स्वदेशे
विद्रोहिभिर्लुण्ठकसार्वभौमैः ।
प्रजाधनप्राणहरैः प्रजान्त-
रातङ्कचिन्ता ह्युदपादि नित्यम् ॥ ४५ ॥

अराजकत्वात् । न विद्यते राजा यत्र स अराजकः 'शेषाद् विभाषा' (पा. ५।४।१५४) इति कप् प्रत्ययः । तस्य भावः अराजकत्वम् । हेतौ पञ्चमी । तस्माद्धेतोः *अखिले स्वदेशे* समस्ते भारते *विद्रोहिभिः* देशद्रोहिभिः । *लुण्ठकसार्वभौमैः* सर्वभूमिषु विदिता इति सार्वभौमाः 'तत्र विदित इति च' (पा. ५।१।४३) इति अण् प्रत्ययः । लुण्ठकेषु सार्वभौमाः सर्वप्रसिद्धलुण्ठकाः पिण्ढारा (पिण्ढारा इति महाराष्ट्रभाषायाम्) इत्यर्थः । *प्रजाधनप्राणहरैः* प्रजाया धनानि प्राणाँश्च हरन्ति 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु'(पा. ३।२।२०) इति ताच्छील्ये टप्रत्ययः तैः *प्रजान्तः* प्रजामध्ये *नित्यमातङ्कचिन्ता हि* निश्चयेन *उदपादि* समुत्पादिता । 'चिणते पदः' (पा. ३।१।६०) इति लुङि चिण् ॥ ४५ ॥

सम्पूर्ण देश में अराजकता के कारण सर्वत्र डाकू और राजद्रोही प्रजा के धन और प्राणों का अपहरण कर रहे थे, जिससे जनता में आतङ्क की चिन्ता उत्पन्न हो गई ॥ ४५ ॥

प्रजामनोरञ्जनचातुरीज्ञैः
सुशासनैरांग्लमहीनरेशैः ।
नियन्त्र्य तन्त्रं निजयुक्तियन्त्रै-
रानन्दितं लोकमनः प्रबन्धैः ॥ ४६ ॥

प्रजामनोरञ्जनचातुरीज्ञैः प्रजाया मनोरञ्जनस्य हृदयाह्लादनस्य चातुरी चतुरस्य कर्म 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (पा. ५।१।१२४) इति कर्मणि ष्यञ् प्रत्यय स्तस्य षित्त्वात् ङीष् प्रत्ययः तां जानन्ति ये । 'आतो ऽनुपसर्गे कः' (पा. ३।२।३) इति कः प्रत्ययः तैः प्रजारञ्जनविधिज्ञैः *सुशासनैः* शोभनशासनैः *आङ्गलमहीनरेशैः* अंग्रेज इत्याख्यै राजभिः *निज-युक्तियन्त्रैः* स्वनीतिजालेन *तन्त्रं* राजशासनं *नियन्त्र्य* निगडीकृत्य सर्व-सन्तुष्टीकरणप्रयत्नप्रबन्धैः *लोकमनः आनन्दितम्* । तच्चोक्तं कामन्दकेन "सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः । विनीतात्मा हि नृपति र्भूयसीं श्रियमश्नुते" ॥ ४६ ॥

प्रजा का मनोरञ्जन करने की कला में निपुण, शासन में कुशल अंग्रेज राजाओं ने अपनी युक्तियों के मन्त्र से शासन तक को सम्भाला और अच्छे शासन से प्रजा के मन को आनन्दित किया ॥ ४६ ॥

आङ्गलसाम्राज्यविस्तारमाह—

बृटीशसाम्राज्यवशंवदानां
राज्यानि राज्ञां करदीकृतानाम् ।
विलासितासादितविक्रमाणां
तदात्र रेजुस्त्रिशतद्वयानाम् ॥ ४७ ॥

बृटीशेति । *बृटीशसाम्राज्यवशंवदानां* बृटीशसाम्राज्यस्य आङ्गलशास-नस्य *वशंवदानामधीनानाम्* । 'प्रियवशेवदः खच्' (पा. ३।२।३८) इति खच्

प्रत्ययः। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) इति मुमागमः। *विलासिता-सादितविक्रमाणां* विलासितया विषयपरतया सादितः विनाशितः विक्रमो येषामत एव करदीकृतानां करप्रदातृसंवृत्तानां *त्रिशतद्वयानां* 'द्वित्रिभ्यां तय-स्यायज्वा' (पा. ५।२।४३) इति अवयवे तयस्यायजादेशः। शतस्य द्वयः शतद्वयः। त्रयश्च ते शतद्वया त्रिशतद्वयाः षट्शतीनां *राज्ञां राज्यानि विरेजुः*। राज्यानां षट्शती तदाऽऽङ्गलानां करप्रदाऽऽसीदित्यर्थः।

उस समय विलासिता के कारण राजागण शौर्यहीन हो गये थे, और भारत के ६०० राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हो गये तथा उनके (अंग्रेजों के) करदाता बन गये ॥ ४७ ॥

भारते पाखण्डवृद्धिमाह—

धर्मेण वीर्येण बलेन हीने
दीने दशां शोच्यतरां प्रपन्ने।
पाखण्डिनां धर्मगुरुब्रुवाणां
पाखण्डलीलाः परितो विलेसुः ॥ ४८ ॥

धर्मेणेति। वैदिकेन *धर्मेण* क्षात्रेण *वीर्येण* तेजसा *बलेन* च *हीने* 'तृतीया विधाने प्रकृत्यादीनामुपसङ्ख्यानाम्' (पा. वा. २।३।१८) इति तृतीया। शोच्यतरां पूर्वतोधिकशोचनीयां 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीय-सुनौ' (पा. ५।३।५७) इति तरप्। *दशामवस्थां प्रपन्ने* प्राप्ते *दीने* च जाते *पाखण्डिनामाडम्बरिणां धर्मगुरुब्रुवाणां* धर्मगुरुम्मन्यानाम्। 'इगुपधज्ञाप्री-किरः कः' (पा. ३।१।१३५) इति ब्रुवः कः प्रत्ययः। 'कृत्यल्युटो' बहुलम् (पा. ३।३।११३) इति बाहुलकाद् ब्रुवो वच्यादेशाभावः। *पाखण्डलीलाः* वञ्चनाः विलासाः *परितः* सर्वतो *विलेसुः*। धर्माडम्बरिणां पाखण्डा वृद्धि-ङ्गताः इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

धर्म, वीर्य और बल में हीन हो जाने से दीन भारतीयों की दशा शोचनीय हो गई और अपने आप को धर्मगुरु कहने वाले पाखण्डियों की पाखण्ड लीला सब ओर फैल गई ॥ ४८ ॥

इदानीं सौराष्ट्रं विवृणोति—

समाजधर्मक्षितिपालनीति-
प्रकामपातोद्भवदुर्दशायाः ।
तस्याः प्रतीच्यां दिशि भारतोर्व्याः
सौराष्ट्रदेशो रुचिरो विभाति ॥ ४९ ॥

समाजेति । *समाजधर्मक्षितिपालनीतिप्रकामपातोद्भवदुर्दशायाः* समाजस्य धर्मस्य क्षितिपालस्य राजनीत्या प्रकाममित्यर्थः यः पातः तस्मात् उद्भवः जन्म यस्याः । 'ऋदोरप्' (पा. ३।३।५७) इति भावेऽप् प्रत्ययः । तादृशी दुर्दशा यस्यास्तस्या *भारतोर्व्याः* भरतभुवः । *प्रतीच्यां दिशि रुचिरः* सुन्दरः रुक् धातोरौणादिकः किर् प्रत्ययः *सौराष्ट्र*काठियावाड इति नामा देशः । *विभाति* विराजते ॥ ४९ ॥

सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक तीनों प्रकार से अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त हुई इस भारत भूमि की पश्चिम दिशा में एक सुन्दर सौराष्ट्र (काठियावाड़) नामक प्रदेश है ॥ ४९ ॥

सौराष्ट्रवीरोत्तमकीर्त्तिकेतू
शत्रुञ्जयश्रीगिरनारशैलौ ।
जिनेन्द्रसन्मन्दिररम्यशृङ्गौ
सिंहाश्रयै र्यं श्रयतो वनान्तैः ॥ ५० ॥

सौराष्ट्रस्य वीराणां या उत्तमा कीर्तिस्तस्या केतू ध्वजरूपौ तत्पराक्रमख्यापककीर्तिस्तम्भाविव *'शत्रुञ्जय'* इति *गिरनार* इति चाभिधानवन्तौ द्वौ शैलौ पर्वतौ *जिनेन्द्रसन्मन्दिररम्यशृङ्गैः* जिनेन्द्राणां जैनमतावलम्बिनां तीर्थङ्कराणां सन्मन्दिरै रम्या शृङ्गा ययोस्तादृशौ तौ पर्वतौ *यमिमं सौराष्ट्रं सिंहाश्रयैः* सिंहानामाश्रया आलया येषु 'अकर्त्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्' (पा. ३।३।१९) इत्यनुवृत्ते आश्रीयते ऽस्मिन्नित्यधिकरणे 'एरच्' (पा. ३।३।५६) इत्यच् प्रत्ययः । *तैः वनान्तै* र्वनप्रान्तैः *श्रयतः* आलम्बेते ॥ ५० ॥

इसी सौराष्ट्र में वीर रत्नों की कीर्ति पताका से युक्त शत्रुञ्जय और गिरनार पर्वत सुशोभित हो रहे हैं, जिन पर्वतों के शिखर जैन तीर्थङ्करों के अनेक सम्पत्ति शाली मन्दिरों से सुशोभित हैं और वनों में सिंह रहते हैं ॥ ५० ॥

श्रीकृष्णचन्द्रोज्ज्वलकीर्तिचन्द्र-
प्रभाप्रभाताणववीचिपूता ।
यं द्वारकाकेशवराजधानी
महार्हहर्म्या समलङ्करोति ॥ ५१ ॥

श्रीकृष्णस्य उज्ज्वलकीर्तिरेव चन्द्रस्य प्रभाभिः प्रभातः प्रकाशितः योऽर्णवः सागरः । 'अर्णसो लोपश्च' (पा. वा. ५।२।१०९) इति वार्तिकेन अर्णस्-शब्दात् मत्वर्थीयः वः प्रत्ययः सकारलोपश्च । तस्य *वीचिभिः* तरङ्गैः पूता पवित्रीकृता । *केशवराजधानी* केशवः कृष्णः 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' (पा. ५।२।१०९) इति मत्वर्थीयो वप्रत्ययः । तस्य *राजधानी* राजनगरी *महार्हहर्म्याः* महामूल्यप्रसादा *द्वारका* नाम्नी यं सौराष्ट्रदेशं दक्षिणतः *समलङ्करोति* सनाथयति । यमकानुप्रासावलङ्कारौ । तयोरेकत्रभूतत्वात् संसृष्टिलङ्कारः ॥ ५१ ॥

श्री कृष्णचन्द्र की राजधानी द्वारकापुरी इसी देश को सुशोभित करती है, जिस (द्वारका पुरी) में महामूल्य महल हैं, जो समुद्र की तरङ्गों से पवित्र हो रही है और जिसको श्री कृष्णचन्द्र की उज्ज्वल कीर्तिचन्द्रिका की किरणों ने प्रकाशित किया था ॥ ५१ ॥

स्तम्भादितीर्थान्तिमकच्छसञ्ज्ञौ
यस्याग्रयाणी इव लम्बमानौ ।
अम्भोधिकन्यामणिलाभलोलौ
विराजतस्तावुपसागरौ नु ॥ ५२ ॥

स्तम्भ आदिर्यस्य स्तम्भादिः । *तीर्थः अन्तिमो* यस्य स तीर्थान्तः । अन्ते भव अन्तिमः 'अन्ताद् मप्रत्ययः । स्तम्भादिश्चासौ तीर्थान्तिमश्च-

स्तम्भादितीर्थान्तिमः समानाधिकरणसमासः । खम्भात इति लोके प्रसिद्धः उपसागरः । तन्नामा कच्छनामा च द्वावेतावुपसागरौ *यस्य* सौराष्ट्रस्य *अग्रपाणी* । पाण्यग्रौ इति प्राप्ते षष्ठीतत्पुरुषे अवयवावयविनोरभेदात् विशेष्यविशेषणाभावः । अग्रगतौ पाणी अग्रपाणी इति वा शाकपार्थिवादित्वात् मध्यपदलोपी द्रष्टव्यम् । *लम्बमानौ* समुद्रं प्रति गतौ । *अम्भोधिः* सागरः तस्य *कन्या* लक्ष्मी सा एव *मणिः* तस्य लाभाय प्राप्तये *लोलौ* उत्सुकौ तौ *उपसागरौ* लघुसागरौ । नात्र 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पतिसाकल्यान्तवचनेषु' (पा. २।१।६) इत्यनेन अव्ययीभावसमासस्तथा सति पञ्चम्यतिरिक्तविभक्तेः अम् प्रसज्येत । प्रादिसमासोऽत्र बोध्यः । उपगतौ सागरम् उपसागरौ । *विराजतः* शोभेते । नु वितर्के । उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ५२ ॥

खम्बात और कच्छ के उपसागर मानों काठियावाड के दोनों हाथों के रूप में लटक रहे हैं, जो मानों समुद्र की लक्ष्मीरूपी कन्या की प्राप्ति से चञ्चल हैं ॥ ५२ ॥

मनोहरोद्याननदीतडागं
यं काठियावाडपदाभिधेयम् ।
प्रदेशरत्नं शतशोविभक्तं
भुनक्त्यहो भूमिभुजां समूहः ॥ ५३ ॥

मनोहराणि उद्यानानि नद्यस्तडागाश्च यस्मिन् तत् *मनोहरोद्याननदीतडागम्* । मनोहरपदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते तस्य विभिन्नलिङ्गत्वे 'नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्' (पा. १।२।६९) इति एकवद्भावः । अतः एव विग्रहे मनोहराणि इति प्रदर्शितम् । *यमेनत्* । यत पदेन पूर्वोक्तमेव विमृश्यते । *काठियावाडपदवाच्यं प्रदेशरत्नं भूमिभुजां* राज्ञां समूहः । शतशः । शतं शतं विभक्तम् । 'संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्' (पा. ५।४।४३) इति शस्प्रत्ययः । भुनक्ति पालयति । 'भुजपालनाभ्यवहारयो रि'ति धातुः ॥ ५३ ॥

इस काठियावाड नामक देश में मनोहर उद्यान बाग बगीचे, नदियाँ और तालाब हैं। यह प्रदेशरत्न सैकड़ों भागों में विभक्त है और इसे अनेक (छोटे-मोटे) राजा इसका उपभोग और पालन कर रहे हैं ॥ ५३ ॥

सुलक्षणाश्वावलिजन्मभूमे-
रापीनशोभाञ्चितगोकुलस्य ।
यस्यानिशं सोऽर्यमहार्णवः स्वै-
रम्भोभिरङ्घ्र्यम्बुजमापुनीते ॥ ५४ ॥

यस्य काठियावाडस्य। किं विधस्य तस्येति विशिनष्टि *सुलक्षणाश्वावलिजन्मभूमेः* शोभनलक्षणमेषामश्वानां ते सुलक्षणाश्वाः वडवा। तल्लक्षणं च यथा—"आताम्रौ पूजितावोष्ठौ बलिहीनौ मृदुत्वचौ। सुप्रोथोत्तरसंस्थं च विपरीतं विवर्जयेत्" इत्यादयः श्लोका अनुसन्धेयाः। तथाविधानाम् वडवानाम् अश्वावलीनां जन्मभूमेः। *आपीनम्* ऊधः। 'अधस्तु क्लीबमापीनम्' इत्यमरः। *तस्य शोभया अञ्चितं* युक्तं *गोकुलं* धेनुव्रजो यस्मिन् *तस्य अङ्घ्र्यम्बुजं* चरणकमलम्। 'पदाङ्घ्रिश्चरणेऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। स महामहिमा अर्वमहार्णवः 'अरबमहासागरः' इति लोकप्रसिद्धः। *स्वाम्भोभिरापुनीते* प्रक्षालयति पावयति। तस्य काठियावाडस्य चरणतले एव पश्चिमदिशि अरबमहासागरः प्रवहति इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

यहाँ की घोड़ियाँ बड़ी शुभ लक्षणों वाली हैं और गाय घड़े के तुल्य बड़े स्तनों वाली होती हैं। इस प्रदेश के चरणकमल को अरब महासागर अपने पानी से निरन्तर पवित्र (धोया) करता रहता है ॥ ५४ ॥

स एव सूर्यो रुचिरः स चन्द्रो
वायुः स हृद्यः विमलं जलं तत् ।
तदम्बरं सा रमणीयपृथ्वी
प्रभुप्रसादाद् रचनापि सैव ॥ ५५ ॥
सा पूर्ववन् मानवमूर्तिरेषा
तानीन्द्रियाण्येव कृतिक्षमाणि ।

तथापि चेतस्सदनादिदानीं
कल्याणकर्माणि लयं गतानि ॥ ५६ ॥

अवनतिं गते भारते अद्य स एव सूर्यो भाति यः पुरोन्नतिं प्राप्ते भारते ऽभात्। अद्यापि स एव रुचिर आह्लादकः चन्द्रः यः पुराऽऽसीत् स एव हृधो वायुः। तदेव च विमलजलम्। अम्बरं गगनमपि तदेव सैव च रमणीय-पृथ्वी, प्रभुप्रसादादीश्वरानुकम्पातः सैवेयं रचना सृष्टिः। मानवमूर्तिः मानवाकृतिरपि पूर्ववत् सैव। इन्द्रियाणि अपि पूर्ववदेव कृतिक्षमाणि कार्यसमर्थानि। सर्वा प्रकृतिः सर्वा च ब्राह्मी रचना सैव या पूर्वमासीत्। अत्र च श्रुतिः– 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षं स्वाहा ॥' उपस्थितेऽपि समुदिते ऽस्मिन् तथापि पुनरपि चेतस्सदनात् मानवानां हृदयमन्दिरात् कल्याणकर्माणि लयं गतानि नष्टानि। विशेषोक्तिरलङ्कारः। तल्लक्षणं च यथा चन्द्रालोके–'विशेषोक्तिरनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे ॥ ५५–५६ ॥

वही सूर्य है, वही सुन्दर चन्द्रमा है, वही आह्लादकारी पवित्र वायु है। नदियों और नालों में वही पवित्र पानी है, वही आकाश है और वही मनोहर पृथ्वी है। ईश्वर की दया से सब रचनायें पूर्व की भाँति ज्यों की त्यों हैं। मनुष्यों की आकृतियाँ भी पहले ही जैसी हैं। मनुष्यों की इन्द्रियाँ वैसे ही कार्यक्षम हैं, तो भी (न मालूम क्यों) (लोगों के) हृदय मन्दिर से वे प्राचीन कल्याणमय कार्य नष्ट हो गये ॥ ५५–५६ ॥

कृतास्पदे मोहनिशाचरेऽस्मिन्
धर्मेण तप्तुं विपिनाय यातम्।
न्यायालयं न्याय इतो विधातु-
र्दिवङ्गता सा हृदयाद् दयापि ॥ ५७ ॥

अस्मिन् मोहनिशाचरे अज्ञानराक्षसे भारतीयचेतस्सु। कृतास्पदे स्थानं प्राप्ते सति। 'आस्पदं प्रतिष्ठायाम्' (पा. ६।१।१४६) इति निपातनम्। धर्मेण तपस्तप्तुं विपिनाय वनाय 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्'

इत्यमरः। *यातम्*। धर्मो विनष्ट इत्यर्थः। धर्माभावेऽधर्मप्रचारे सति *न्यायोऽपि विधातुर्ब्रह्मणः न्यायालयम् इतः गतः*, ततोऽन्यत्र न तस्य शरणमासीत्। न्यायाभावे च *दयापि मनुजानां हृदयाद् दिवं गता* विनष्टा ॥५७॥

इस (प्रदेश की जनता) में जब मोहनिशाचर ने अपना सिंहासन जमा लिया, तब बेचारा धर्म तप करने के लिये जङ्गल में चला गया, न्याय करने के लिये विधाता के न्यायालय में चला गया। दया भी हृदय से निकल कर स्वर्ग लोक चली गई ॥ ५७ ॥

दुर्वृत्तता वैष्णवधर्मनेतु-
धर्मान्धता शैवमतस्य वित्ता।
स्वामिप्रभोर्लोलुभताऽर्थराशेः
सौराष्ट्रगौरप्यघपङ्कमग्ना ॥ ५८ ॥

वैष्णवः सम्प्रदायविशेषः तस्य *धर्मस्य नेतुः* महन्त इति प्रसिद्धस्य *दुर्वृत्तता* दुराचारिता *शैवमतस्य धर्मान्धता*. *स्वामिप्रभोः* स्वामिनारायणः इत्याख्यस्य मतस्य *यथार्थराशेः* धनराशेः *लोलुभता*। लुभधातौ यङन्तादचि कृते भावे तल् प्रत्ययः, गुणस्तु 'न धातुलोप आर्धधातुके' (पा. १।१।४) इति न भवति। *वित्ता* विचारिता। 'विन्नवित्तौ विचारितौ' इत्यमरः। 'नुदविदोन्दत्राघ्राह्लीभ्योऽन्यतरस्याम्' (पा. ८।२।५६) इति सूत्रेण पक्षे निष्ठातकारस्य नकाराभावः। अत्र च विचारणार्थस्य एव विदोग्रहणम् तथा चात्र श्लोकवार्तिकम्—'वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते। वित्तेर्विन्नश्च वित्तश्च भोगे विन्नश्च विन्दतेः'। एवंविधे काले *सौराष्ट्रगौरपि अघपङ्के* पापपङ्के। 'कलुषं वृजिनेनोघम्' इत्यमरः। *निमग्ना*। सौराष्ट्रोऽपि न स्वगौरवम् अरक्षत्। अत्र रूपकालङ्कारः ॥ ५८ ॥

वैष्णव धर्म के महन्तों की दुराचार वृत्ति प्रसिद्ध थी, वैष्णव धारियों की धर्मान्धता लोकविदित थी, स्वामिनारायणियों की धनलोलुपता कुख्यात थी। सौराष्ट्ररूपी गायें बेचारी पापपङ्क में धस गईं ॥ ५८ ॥

इति करुणदशामपेक्ष्य भूमेऽ
र्दुरिततमोदलनाय दिव्यधामा।

भुवनहितकरः प्रकाशितोऽयं
रविरिव विश्वसृजा व्रती महर्षिः ॥ ५९ ॥

भूमेः इति एवं विधाम्। इति शब्दः स्वरूपनिर्देशे प्रयुज्यते। करुणदशां दयनीयावस्थाम् अवेक्ष्य अवलोक्य दुरिततमोदलनाय पापतिमिरविनाशाय विश्वसृजा ब्रह्मणा अयं वर्णयिष्यमाणो भुवनहितकरः जनकल्याणकर्त्ता व्रती ब्रह्मचारी महर्षिः दयानन्दोरविरिव प्रकाशितः। यथा तमोविनाशाय रविस्तथा पापविनाशाय दयानन्दः प्रादुर्भूतः। अत्रोपमालङ्कारः॥ पुष्पिताग्रा छन्दः, तल्लक्षणं च यथा पैङ्गलच्छन्दःशास्त्रे, 'पुष्पिताग्रा नौ र्यौ, न्जौ ज्रौ ग् (५।४१)' ॥ ५९ ॥

इस भूमि की ऐसी करुणदशा देखकर विश्वविधाता ने पाप-अन्धकार को नष्ट करने के लिये, लोक का कल्याण करने वाले, दिव्य तेजधारी ब्रह्मचारी महर्षि (दयानन्द) को सूर्य की भाँति प्रकट किया ॥ ५९ ॥

प्रथितभुवनदीप्तेः श्रीदयानन्दभानो-
रुदयगिरिभुवो या प्राप पुण्यां प्रतिष्ठाम्।
प्रकृतिरुचिरशोभा ब्रह्मणः शिल्परूपा
जनयतु हृदि तस्याः प्रेक्षकाणां प्रमोदम् ॥ ६० ॥

इति वृन्दावनगुरुकुलविश्वविद्यालयाधिगतविद्यारत्नस्य वटोदरार्यकन्यामहाविद्यालयाचार्यस्य श्रीपण्डितमेधाव्रतकविरत्नस्य कृतौ दयानन्ददिग्विजये ब्रह्माङ्के महाकाव्ये भारतदुर्दशाङ्कनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

—०:०:०—

प्रथिता विस्तीर्णा भुवनेषु लोकेषु दीप्तिः प्रकाशो यस्य तस्य प्रथितभुवनदीप्तेः श्रीदयानन्दभानोः या नगरी उदयगिरिभुवः उदयाचलस्थानस्य पुण्यां प्रतिष्ठां प्राप। या नगरी दयानन्दजन्मभूः इति गौरवं धत्ते सा ब्रह्मणः शिल्परूपा 'ब्रह्मणा स्वकलाप्रदर्शनाय विरचिता इति भान्ती तस्य प्रकृति-

रुचिरशोभा नैसर्गिकसौन्दर्यं प्रेक्षकाणां दयानन्दाय स्वश्रद्धाञ्जलिं दातुमागन्तुकानां हृदि प्रमोदं जनयतु। अग्रिमाङ्कसूचना टङ्कारावर्णनं प्रति। मालिनीवृत्तम् तल्लक्षणं च यथापैङ्गलच्छन्दः शास्त्रे 'मालिनी नौ मयौ म् (७।१४)' ॥ ६० ॥

इत्यधीतसाङ्गोपाङ्गवेदचतुष्टयेन आचार्यमहावीरेण विरचितया विजयमङ्गलाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतो महाकविमुनिमेधाव्रतकृतौ
दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये भारतदुर्दशाङ्कनं
नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

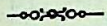

जो नगरी (टङ्कारा) विख्यात तेजस्वी श्रीदयानन्दरूपी सूर्य की उदयगिरि स्थान के गौरव को प्राप्त कर चुकी है उस नगरी की स्वभाव सुन्दर विश्वकर्मा की शिल्पकला की निदर्शनरूप प्राकृतिक शोभा दर्शकों के मन को आनन्दित करे ॥ ६० ॥

इति द्वितीय सर्ग।

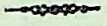

तृतीयः सर्गः

'भजेमहि निपीयैकं मुहुरन्यं पयोधरम् ।
मार्गन्तं बालमालोक्याश्वसयन्तौ हि दम्पती ॥'

पूर्वसर्गे सौराष्ट्रं वर्णयित्वासौराष्ट्रान्तर्वर्तीमिदानीं टङ्कारानगरीं वर्णयति—

सस्यसम्पत् सनाथानां क्षेत्राणां मालयान्विता ।
विलसद् वेदटङ्कारा टङ्कारा नगरी मणिः ॥ १ ॥

सस्येति । तत्र सौराष्ट्रे *सस्यसम्पत्सनाथानां* चणकगोधूमादिसस्यमेव सम्पद्वैभवं तेन सनाथानामलङ्कृतानां *क्षेत्राणां मालया श्रेण्यान्विता* विप्राणां बाहुल्याद् विलसन् वेदनां टङ्कारो ध्वनिर्यस्यां सा *विलसद्वेद-टङ्कारा* । 'टङ्कारो विस्मये पुंसि प्रसिद्धौ शिञ्जिनीध्वनौ' इति मेदिनी । *नगरीमणिर्नगरीषु मणिः* । निखिलनगरीशिरःशेखरायिता टङ्कारा नाम्नी नगरी । अस्तीति शेषः । टङ्काराटङ्कारां इति यमकम् । अत्र सर्गेऽनुष्टुप्-छन्दः, तल्लक्षणं च यथाश्रुतबोधे—

'श्लोके षष्ठे गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चकम् ।
द्विचतुष्पादयो र्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १० ॥ १ ॥

(काठियावाड़ में) टङ्कारा नामक श्रेष्ठ नगरी है । यह नगरी खेतों की श्रेणी से युक्त है और वेद की ध्वनि से सुशोभित है ॥ १ ॥

तन्नद्यौ वर्णयति—

असुन्धराथ डेमीति निर्झरिण्यौ यदङ्गने ।
सेविके इव शोभेते जनसेवाकृतव्रते ॥ २ ॥

असुन्धरेति । *यदङ्गणे* यस्याष्टङ्कारानगर्या अङ्गणे ऽजिरे उपशल्य इत्यर्थः । 'अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः । असुन्धरा डेमी चेतिनाम्न्यौ द्वौ

निर्झरिण्यौ नद्यौ। उत्प्रेक्षयति—*जनानां सेवायै कृतव्रते* विहितप्रतिज्ञे सेविके इव शोभेते। उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ २ ॥

इस नगरी के आङ्गन में असुन्धरा और डेमी नामक दो नदियाँ मानो जनसेवा का व्रतधारण करके सेविका की भान्ति विराज रही हैं ॥ २ ॥

कथं ते जनान् सेवेत इत्याह—

दर्भासनफलाहारस्वच्छनीरसमर्पणैः ।
अतिथीन् नन्दयन्त्यौ ये मन्दचन्दनमारुतैः ॥ ३ ॥

दर्भेति। *दर्भासनस्य फलाहारस्य स्वच्छनीरस्य च समर्पणैः* प्रदानैः। करणे तृतीया। तत्परिसरप्रान्ते दर्भफलद्रुमाणां प्राचुर्य्यमनेन सूचितम्। चन्दनगन्धयश्च ते मारुताश्चन्दनमारुताः। शाकपार्थिवादित्वान्मध्यपदलोपिसमासः। अथवा गुणगुणिनोरभेदाच्चन्दनशब्देन चन्दनगन्धोऽभिधीयते। *मन्दैश्चन्दनमारुतैरतिथीन्* दयानन्दजनिभुवं नगरीं द्रष्टुमागतान् जनान् *नन्दयन्त्यौ ये शोभेते* इति पूर्वेण श्लोकेनान्वयः। अग्रिमेऽपि वृत्त इदमेव क्रियापदमनुवर्त्तनीयम् ॥ ३ ॥

ये दोनों नदियाँ दर्भासन, फलाहार, निर्मल जल तथा शीतल मन्द सुगन्ध पवन द्वारा अतिथियों को आनन्द देती रहती हैं ॥ ३ ॥

मुनीन्द्रगणवन्द्ये ये ह्यमन्दानन्दसुन्दरैः ।
कालिन्दीगङ्गयोर्लक्ष्मीं जयन्त्यौ कूलकाननौ ॥ ४ ॥

मुनीति। *मुनीन्द्रगणेन वन्द्ये* स्तुत्ये। 'वदि अभिवादनस्तुत्यो'रिति स्तुत्यर्थस्यैवात्र सामर्थ्यम्। येऽसुन्धराडेमीनद्यौ। *अमन्दानन्देन सुन्दराणि* अमन्दानन्दसुन्दराणि। भृशमानन्दप्रदत्त्वाद्, रुच्यावहाणीत्यर्थः। 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचने'नेति (पा. २।१।२९) समासः। तादृशैः *कूलकाननैस्तीरस्थितोपवनैः कालिन्दीगङ्गयो* र्यमुनाभागीरथ्यौर्लक्ष्मीं शोभां। 'लक्ष्मीः सम्पत्तिशोभयोरि'ति मेदिनि। *जयन्त्यौ* तिरस्कुर्वत्यौ शोभेते ॥ ४ ॥

ये नदियाँ अत्यन्त सुखदायक तथा सुन्दर तटोपवन से गङ्गा और यमुना की शोभा को भी मात दे रही हैं अतः एव मुनिगणों से ये वन्दनीय हो ॥ ४ ॥

प्रयागसङ्गमेनोपमिमीते—

दयानन्दसरस्वत्या दिव्यप्रच्छन्नधारया ।
सङ्गते तीर्थराजे ये तरङ्गिण्याविवामले ॥ ५ ॥

दयानन्देति । *इव* यथा *तरङ्गिण्यौ* गङ्गायमुने *तीर्थराजे* सर्वतीर्थस्थान-मूर्द्धाभिषिक्ते प्रयागे । प्रच्छन्नधारया सरस्वत्या नद्या सङ्गते मिलिते तथैवेमे *अप्यमले* विमलजले डेम्यसुन्धरे नद्यौ । *दिव्यप्रच्छन्नधारया* दया-नन्दस्य जनिभूत्वा लोके चास्य सम्बन्धस्य प्रत्यक्षादृश्यत्वात् प्रच्छन्न-धारात्वमुक्तम् । *दयानन्दसरस्वत्या* दयानन्दे सरस्वतीनदीत्वारोपोतिम् । श्लेषेण वा दयानन्दसरस्वतीनाम्नः सरस्वतीनद्याश्चार्थाभिव्यक्तिः । दयानन्दस्य सरस्वत्या विद्यया वा सङ्गते । तस्मादृङ्काराऽपि त्रिवेणी-सङ्गमत्वात् प्रयागवत्तीर्थराजोवर्वति ॥ ५ ॥

जैसे तीर्थराज प्रयाग में दिव्य (पवित्र) और गुप्त धारा वाली सरस्वती के साथ निर्मल नदियाँ गङ्गा और यमुना सङ्गत है वैसे ही दयानन्द की सरस्वती अथवा दयानन्द सरस्वती के साथ ये नदियाँ (असुन्धरा और डेमी) सङ्गत हो गईं ॥ ५ ॥

पुनः टङ्कारानगरीमेव वर्णयति—

चतुर्द्वारयुताभित्तिः प्रस्तरै रचिता दृढा ।
राजते दुर्गवद् यस्या रक्षिणी जननीव सा ॥ ६ ॥

चतुरिति । *यस्या* नगर्याश्चतुर्द्वारयुता चतुर्षु दिक्षु प्रतिदिशमेकैकद्वार-वती । 'स्त्री द्वार्द्वार प्रतिहारः' इत्यमरः । *दृढा प्रस्तरैः* पाषाणै *रचिता* । 'रोरि' (पा ८।३१४) इति रेफलोपः । *भित्तिः* प्राचीरः । अनिष्टाज्जननीव नगरीं शत्रुभ्यो *रक्षिणी* परितः सर्वतो *दुर्गवद् राजते* । उपमालङ्कारः ॥ ६ ॥

इस (टङ्कारा) के चारों ओर पत्थरों से बनी हुई किले की भान्ति दीवार है जिस में चार दरवाजे (चारों ओर एक एक) हैं । यह दीवार नगरी की माता के समान रक्षा करती है ॥ ६ ॥

निष्पन्दजलवेणीयं निर्मला परिखीकृता ।
पुरीकण्ठगता रम्या मुक्तामालेव शालते ॥ ७ ॥

निष्पन्देति । *निष्पन्दा* गतिहीना *जलस्य वेणी* ओघ इति निष्पन्द-जलवेणी । 'ओघः प्रवाहोवेणी च धारा-स्रोतोरय' इति हलायुधः । *निर्मला* तृणधूल्यादिरहिता । *परिखीकृता* 'अभूततद्भावे च्विः' । नागरिकै रचिता परिखा तथा *शालते* शोभते । भ्वादिगणस्याकृतिगणत्वाच्छालतेर्धातुत्वं ज्ञेयम । तथा चाह काव्यालङ्कारसूत्रकारः 'मिलिक्लिबिक्षिपिप्रभृतीनां धातुत्वं धातुगणस्यासमाप्तेः' । यथा *पुरीकण्ठगता* नगरीग्रीवावलम्बिता *रम्या मुक्तामाला* स्यात् । उपमालङ्कारः ॥ ७ ॥

इस (नगरी) के चारों ओर स्थिर और गम्भीर जलधारा वाली खन्दक (खाई) थी जो इसके गले में मोती की माला की भान्ति सुशोभित हो रही थी ॥ ७ ॥

अयोध्या रामचन्द्रेण मथुरा श्रीमुरारिणा ।
विश्ववन्द्या यथा पूता टङ्कारापूर्महर्षिणा ॥ ८ ॥

अयोध्येति । *यथा रामचन्द्रेण* स्वजनुषाऽयोध्या *पूता* पवित्रीकृता । *श्रीमुरारिणा* श्रीकृष्णेन च यथा *विश्ववन्द्या मथुरा* पूता तथैव महर्षिणा दयानन्देन टङ्कारापूः नगरी स्वजनुषा पूता ॥ ८ ॥

जैसे अयोध्या श्री रामचन्द्र से, मथुरा श्री कृष्ण से पवित्र और विखवन्द्य बन गई वैसे ही टङ्कारा नगरी महर्षि दयानन्द से पवित्र तथा विश्वनन्दनीय बन गई ॥ ८ ॥

आबालवनितावृद्धस्नानयोग्यजलाशया ।
लसल्लास्यकलापीन्द्रद्योतिताराममन्दिरा ॥ ९ ॥

आबालेति । *आबालवनितावृद्धम्* बालात् प्रभृति वनितां वृद्धं च यावत् । 'आङ्मर्यादाभिविध्यो' (पा. २।१।१३) इत्यभिविधावव्ययीभावः समासः । आबालवनितावृद्धं सर्वेषां *स्नानस्य योग्या जलाशया* जलाधारा यस्या सा तथोक्ता । जलं शेतेऽस्मिन्निति जलाशयः । 'पुंसि सञ्ज्ञायां घः

प्रायेण' (पा. ३।३।११८) इति घप्रत्ययः। *लसच्शोभमानं लास्यं नृत्यं* येषां ते तथाविधाः *कलापीन्द्राः* मयूराः। 'केकी शिखी शिखण्डी प्रचलाकी बर्हिणः कलापी च सर्पाशनो मयूरः शिखावलः श्यामकण्ठश्च' इति हलायुधः। तादृशैस्तै *द्योतिताः* दीपिता *आरामा* उपवनानि *मन्दिराणि* च यस्या सैवंविधा टङ्कारा। वर्तत इतिशेषः। स्वभावोक्तिरलङ्कारः द्योतित इत्यत्र णिजन्तात् क्तो ज्ञेयः अन्यथा 'उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम्' (पा. १।२।२१) इति भाव आदिकर्मणि च वैकल्पिकत्वस्य विधानात् कर्मणि कित्वाद् गुणाभावः प्रसज्येत। अनुप्रासालङ्कारः॥ ९॥

यहाँ (टङ्कारा में) बच्चों से लेकर स्त्री तथा वृद्धों तक सब के स्नान के योग्य तालाब हैं। इसके बाग बगीचे तथा मन्दिरों या घरों के आँगन नाचते हुये मोरों से सुन्दर लगते हैं॥ ९॥

यत्सेतुबन्धरूद्धाम्भःसंतरद्बालमण्डली।
मनोहरति देवानां प्रफुल्लाननचन्द्रिका॥ १०॥

यदिति *यस्याः* पूर्वोक्तडेमीनद्याः *सेतुबन्धेन रूद्धं यदम्भस्तस्मिन् संतरन्ती* या *बालानां मण्डली* सा तथोक्ता। 'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु' (पा. ६।३।३४) इति पुंवद्भावः। *प्रफुल्लाननचन्द्रिका* विकसितमुखज्योत्स्ना, रूपकालङ्कारः। सा बालमण्डली न केवलं मनुष्याणामपितु देवानामपि विदुषां वीतरागाणामपि *मनोहरति*। तस्यां सन्तरन्तो बाला सुतरां रोचन्ते॥ १०॥

इसकी नदियों में बाँध बँधे हुये होने से पानी रुक-रुक कर बहता है। इसमें स्नान करती हुई खिले हुये मुखचन्द्रिका वाली बच्चों की मण्डली देवों के मन को भी आकर्षित करती है॥ १०॥

यत्र सायं समायान्ती गोचराद् गोतति द्रुतम्।
घटोघ्नी याति वत्सेभ्यो नयन्तीवोपदापयः॥ ११॥

यत्रेति। *यत्र* यस्यां टङ्कारायां नगर्याम्। 'तसिलादिष्वा कृत्वसुच' (पा. ६।३।३५) इति त्रलि पुवद्भावः। 'गोचराद् गावश्चरन्ति यस्मिन्निति गोचरः। 'गोचरसञ्चरवहव्रजापणनिगमाश्च' (पा. ३।३।११९) इत्य-

धिकरणे घप्रत्ययान्तनिपातनम्। *सायं द्रुतं सरभसं समायान्ती* प्रतिनिवर्तमाना। शत्रन्तस्य 'आच्छी नद्योर्नुम्' (पा. ७।१।८०) इतिनुम्। 'उगितश्च' (पा. ४।१।६) इतिङीप्। गावो हि प्रातश्चरणाय विसृज्यन्ते सायं च प्रत्यानीयन्त इति सार्वत्रिकमेव। *वत्सेभ्यस्तर्णकेभ्य उपदारूपेण पयोनयन्तीव*। इवात्रोत्प्रेक्षायां, मन्य इत्यर्थः। प्रातर्दोहेन रिक्तमूधः सायं पर्यन्तं पुनरापूर्य्यतेऽतो घट इव अधो यस्याः सा *घटोध्नी*। लुप्तोपमा। 'ऊधसोऽनङ्' (पा. ५।४।१३१) इत्यनङ् स्त्रियां च बहुव्रीहेरूधसोङीप् (पा. ४।१।२५) इतिङीप्। एवं विधा *गोतति* गोव्रजो *याति* शोभते। अत्र सर्वत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः ॥ ११ ॥

इसमें सायंकाल चरागाह से दौड़ते आता हुआ गौवों का झुण्ड ऐसा लगता है जैसे अपने बछड़ों के लिए भेंट रूप में स्तनघटों में दूध ला रहा हो ॥ ११ ॥

मोरवीराज्यरत्नस्य यन्नगर्या महापणे।
लक्षैः स्म पणते द्रव्यै र्वणिग्वर्य्या धनीश्वराः ॥ १२ ॥

मोरवीति। *मोरवीराज्यरत्नस्य* मोरवीराज्यान्तर्गताया *यन्नगर्या* यस्या टङ्काराया *महापणे* प्रधानविपण्याम्। 'पणो वराटमाने स्यान्मूल्ये कार्षापणे ग्लहे। क्रय्यशाकाट्टिकाद्यूतव्यवहारे भृतौ धने' इति मेदिनी। *धनीश्वरा वणिग्वर्य्या*वैश्या आपणिका *लक्षै द्रव्यै* लक्षैः पदार्थैर्धनै रूप्यकैरिति यावत्। *पणते* व्यवहरति। द्रव्ये वित्तं स्वापतेयम् इत्यमरः। 'व्यवहृपणोः समर्थयोः' (पा. २।३।५७) इति षष्ठी तु कर्मण्येव अत्र तु द्रव्यस्य कारणत्वेन विवक्षया सा न। 'गूपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः' (पा. ३।१।२८) इत्यायप्रत्ययस्तु स्तुत्यर्थादेव भवति तथा च वार्तिकमपि 'स्तुत्यर्थस्य पणतेरायप्रत्यय इष्यते ॥ १२ ॥

मोरवी नामक श्रेष्ठ राज्य की इस नगरी (टङ्कारा) के बड़े-बड़े बाजारों में धनिक बनिये लाखों का व्यापार करते हैं ॥ १२ ॥

देवमानवगन्धर्वान् नन्दयन्ती निजाङ्कगान्।
नानाभोग्यपदार्थैर्या गां गते वामरावती ॥ १३ ॥

देवेति। *या नगरी निजाङ्कगान्* स्वक्रोडस्थितान् *देवमानवगन्धर्वान्* विदुषो मनुष्यान् कलाकोविदाँश्च। अमरावतीपक्षे देवजातयः। *नाना-भोग्यपदार्थैः* कमनीयवस्तुभि *र्नन्दयन्ती गां* पृथ्वीम्। भूमौ पशौ च गोशब्दः इत्यभिधानचिन्तामणिः। *गतां* प्राप्तेवा*मरावती* इन्द्रपूरिव भाति। इवात्रोत्प्रेक्षायां, मन्ये पृथ्वीं प्राप्ता इन्द्रपुरी शोभत इत्यर्थः॥ १३॥

अपनी गोद में आये हुये विद्वानों मनुष्यों और कलाकारों को यह अनेक योग्य पदार्थों से प्रसन्न करती हुई ऐसी लगती हैं जैसे पृथ्वी के ऊपर अमरावती (देव नगरी) हो॥ १३॥

जनानामष्टसाहस्रीं पोषयन्ती निजाश्रये।
धनधान्यसमृद्धा या शिवालयविराजिता॥ १४॥

जनानामिति। *या* टङ्कारानगरी *निजाश्रये* स्वशरणे। *जनाना-मष्टसाहस्रीम्* अष्टानां सहस्राणां समाहारो ऽष्टसाहस्री। 'द्विगोरेकवचनम्' (पा. २४।१) इत्येकवचनम्। 'द्विगोः' (पा. ४।१।२१) इतिङीप्। पोष-*यन्ती* पालयन्ती *धनधान्यसमृद्धा शिवालयविराजिता* शिवमन्दिरबहुला च भाति॥ १४॥

अपनी शरण में रहने वाले आठ हजार लोगों का यह भली-भाँति पोषण करती है। यह धन धान्य से समृद्ध है, और इसमें अनेक शिवालय है॥ १४॥

स्वच्छाम्भोनिपतद्बिम्बा यद्वप्रप्रस्थमहालयाः।
आत्मसौन्दर्यमादर्शे प्रैक्षन्तेव मणिप्रभाः॥ १५॥

स्वच्छेति। तस्या नगर्या *यद्वप्रप्रस्थमहालया* यस्या डेमीनाद्या-वप्रयोस्तटयोस्तिष्ठन्ति ये महालयास्ते यद्वप्रस्थमहालयाः कूलवर्ति-प्रसादाः। 'वप्रस्तीते पुमानस्त्री रेणौ क्षेत्रे चये तटे' इति मेदिनी। स्वच्छे निर्मलेऽम्भसि जले *निपतन्तो बिम्बा* प्रतिभासा येषां ते तथोक्ताः। सुधा-लिप्तत्वान्मणिप्रभा *मणिसन्निभरुच आत्मसौन्दर्यमादर्शे* आलोके *प्रैक्षन्त इव*। इवोत्प्रेक्षायामित्युत्प्रेक्षालङ्कारः॥ १५॥

इसकी परिखा (खाई) के किनारों पर बने हुये महलों का प्रतिबिम्ब खाई में भरे हुये पानी में पड़ता हैं, तब ऐसा लगता है मानों शीशे में वे रत्न जटित महल अपने सौन्दर्य को देख रहे हों ॥ १५ ॥

एनोमृगनिहन्तारं विषयद्विपमर्दिनम् ।
नरकेशरिणं वीरं या प्रासूत महाटवी ॥ १६ ॥

एन इति । एनः पापम् । 'कलुषं वृजिनैनोऽघमहो दुरितदुष्कृतयः' इत्यमरः । तदेव *मृगस्तस्य निहन्ता* इत्येनोमृगनिहन्ता । विषयः कामः स एव द्विपो हस्ती तं पौनः पुन्येन मृद्नातीति *विषयद्विपमर्दी* । 'बहुलमाभीक्ष्ण्ये' (३।२।८१) इति णिनिः, 'व्रते' (पा. ३।२।८०) इति वा णिनिर्द्रष्टव्यः । उभयत्रात्र समासे रूपकम् । तादृशं *नरकेशरिणं* पुरुषसिंहम् । 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (पा. २।१।५६) इति समासः । *वीरं* दयानन्दं *महाटवी* अरण्यानीव *या* नगरी टङ्कारा *प्रासूत* प्रासोष्ट । यथा ऽरण्यानी सिंहं प्रसूते तथेयं नगरी दयानन्दं प्रासूतेत्यर्थः । अत्र रूपकालङ्कारः ॥ १६ ॥

इस महान् जङ्गल जैसी नगरी ने पाप रूपी मृग को मारने वाले और विषय रूपी हाथी का मर्दन करने वाले दयानन्द मनुष्य रूपी वीर शेर को पैदा किया ।१६।

आदित्यब्रह्मचारीन्द्रं ब्रह्मानन्दविदं मुनिम् ।
अद्वितीयं महात्मानं योगिराजं जगद्गुरुम् ॥ १७ ॥
वेदविद्याविदां वर्य्यं जगदुद्धारकं यतीम् ।
प्रसूयोपाहसद्यालं सकलोर्वीमहीपुरीः ॥ १८ ॥

(युग्मम्)

आदित्येति । *आदित्यब्रह्मचारीन्द्रं* नैष्ठिकब्रह्मचारिणम् । अत्र चाह छान्दोग्योपनिषत्—'अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद् वर्षाणि तत् तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः, प्राणा वावादित्या एतेहीदं सर्वमाददते ॥' *ब्रह्मानन्दविदं* कृतब्रह्मसाक्षात्कारं *मुनिमद्वितीयमप्रतिद्वन्द्विनं महात्मानम्* । चतुर्दशवर्षाणि सोऽटवीष्वटाट्यमान आत्मानं योगेऽनेष्टात एव *योगिराजम्* ।

अविद्यां खण्डयित्वा विद्यानां प्रचारकत्वाज्जगद्गुरुम् वेदविद्याविदां वर्यं वेदज्ञमूर्धन्यम्। 'यतश्च निर्धारणम्' (पा. २।३।४१) इति षष्ठी। 'अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु' (पा. ३।१।१०१) इति वर्यापदं स्त्रियां यत्प्रत्ययान्तं निपातितम्। 'कृत्यल्युटो बहुलमिति' (पा. ३।३।११३) बाहुलकात् पुंस्यपि साधुः। जगदुद्धारकं जगत उद्धारक इति शैषिकी षष्ठी द्रष्टव्या। 'कर्तृकर्मणोः कृति' (पा. २।३।६५) इति षष्ठ्या तु 'तृजकाभ्यां कर्त्तरि' (पा. २।२।५५) इति समासनिषेध एव स्यात्। अथवा 'तत्प्रयोजकोहेतुश्च' (१।४।५५) इति ज्ञापकादस्य प्रायिकत्वं वेद्यम्। यति दयानन्दं प्रसूय या नगरी सकलोर्वीमहीपुरीः अन्या धरातलगताः सर्वाः प्रसिद्धनगरीः। अलं पर्याप्तम्। 'अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्'—इत्यमरः। उपाहसत् न्यक् कृतवती॥ १७–१८॥

श्रेष्ठ आदित्य ब्रह्मचारी, ब्रह्मानन्द को जानने वाले, मुनि, अनुपम महात्मा, योगिराज, समस्त जगत् के गुरु, वेद विद्या के विद्वान् पुङ्गव, संसार के उद्धारक, जितेन्द्रिय दयानन्द को पैदा करके यह नगरी मानो संसार भर की बड़ी-बड़ी नागरियों का उपवास कर रही हो॥ १७–१८॥

कुशपुष्पवती हव्यद्रव्यौषधिसमिच्चया।
रेजे यज्ञस्थलीवेयं गो विप्रगणमण्डिता॥ १९॥

कुशेति। कुशपुष्पवती टङ्कारानगर्यां कुशं पुष्पाणि पुष्पवन्तो द्रुमाक्षुपा वाऽतिशयेन भवन्ति। 'लघ्वक्षरं पूर्वं निपततीति' (पा. वा. २।२।३४) कुशस्य पूर्वनिपातः। होतुमर्हाणि हव्यद्रव्याणि। 'हव्यकव्ये दैवपित्र्ये अन्ने' इत्यमरः। ओषध्यो यवगोधूमादयः, 'ओषध्यः फलपाकन्ता' इति स्मरणात्। समिधो यज्ञियवृक्षा अश्वत्थपलाशादयः। एतेषां चयो बाहुल्यं यत्र सा हव्यद्रव्यौषधिसमिच्चया। गोविप्रगणमण्डिता गवाढ्या ब्राह्मणवर्गबहुला चेयं नगरी यज्ञस्थलीव रेजे। यज्ञियसम्भारस्य तत्र निसर्गत उपस्थानाद् यज्ञवेदीव भाति। उत्प्रेक्षालङ्कारः॥ १९॥

कुश, पुष्प, हव्य-सामग्री, औषधियों और समिधाओं से युक्त तथा गौ और ब्राह्मणों से सुशोभित यह नगरी यज्ञवेदी के समान प्रतीत होती है॥ १९॥

शैववैष्णवभक्तानां विप्राणां वणिजां कुलैः ।
मूर्तिपूजाप्रसक्तानां मन्दिरैः शुशुभे कृतैः ॥ २० ॥

शैवेति । *मूर्तिपूजाप्रसक्तानां* पाषाणोपासनारतानां । शिवमतानुयायिनां विष्णुमतानुयायिनां चेति *शैववैष्णवभक्तानां विप्राणां* ब्रह्मणानां *वणिजां* वैश्यानां च कुलैः वर्गैः कृतै रचितैर्मन्दिरैर्देवालयैः शुशुभे ॥ २० ॥

मूर्तिपूजा में संलग्न शैव और वैष्णव मतावलम्बी ब्राह्मण और वनियों के कुलों द्वारा बनाये गये मन्दिरों से यह नगरी सुशोभित थी ॥ २० ॥

दयानन्दस्य पितरं कृष्णं वर्णयति युग्मेन—

इलाललामरूपायां तस्यां शीलगुणाञ्चितः ।
सहस्रोदीच्यवंशीयब्राह्मणानां शिरोमणिः ॥ २१ ॥
त्रिवेदी सामवेदज्ञः शिवभक्तिपरायणः ।
लाललालितबालः श्रीकृष्णनामाऽभवद् द्विजः ॥ २२ ॥

इलेति । *इलायां* पृथिव्यां *ललामरूपायां* भालभूषणायितायां *तस्यां* टङ्कारानगर्याम् । *सहस्रोदीच्य* इताख्ये *वंशे* भवाः सहस्रोदीच्यवंशीया *ब्राह्मणाः* । तेषां *शिरोमणिर्*मूर्धन्यः । त्रयाणां वेदानां समाहारस्त्रिवेदम् । षण्मासाण्यच्च (पा. ५।१।८३) इति ज्ञापकाद् 'द्विगोः' (पा. ४।१।२१) इति स्त्रीशासनमनित्यम् । वेदत्रयमस्यास्तीति *त्रिवेदी* वेदत्रयाध्यायीत्यर्थः । *सामवेदज्ञो* वेदवित् । *शिवभक्तिपरायणः* पार्वतीजानिपूजकः । *लाल* इति श्रीकृष्णस्य पितुर्नाम तस्य *लालितबालः* विप्रपुत्रः *श्रीकृष्णनामा* 'कर्सनजी' इत्यभिधोद्विजोऽभवत् ॥ २१-२२ ॥

पृथ्वी की आभूषणरूप इस नगरी में सहस्रोदीच्य वंश में उत्पन्न ब्राह्मणों में शिरोमणि शील और गुणों से सम्पन्न, शिवभक्ति में परायण, सामवेदी, श्री लालजी के पुत्र कर्सन जी त्रिवेदी नामक, ब्राह्मण थे ॥ २१-२२ ॥

तेजस्वी पुरुषो धीमान् राजसम्मानभूषितः ।
राजकीयपदे श्रेष्ठे वर्त्तमानो यशोधनः ॥ २३ ॥

तेजस्वीति। स कृष्णस्तेजस्वी। 'अस्मायामेधास्रजोविनिः' (पा. ५।२।१२१) इति मत्वर्थीयो विनिः। धीमान् राजसम्मानभूषितो राज्ञामादृतः राजसम्मानसूचकपट्टलाञ्छितश्च। श्रेष्ठे उच्चे राजकीयपदे शासकीयपदे वर्त्तमानोऽधिकृतः। राज्ञामिदं राजकीयम्। 'राज्ञः क च' (पा. ४।२।१४०) इति छप्रत्ययः। यशोधनः प्रथितकीर्तिः पुरुष आसीत्॥ २३॥

ये (कर्सनजी) तेजस्वी, बुद्धिमान्, राजकीय सम्मान से सुशोभित, यश को ही धन मानने वाले, उच्च राजकीय पद पर आसीन थे॥ २३॥

स्वग्रामशासनेशो यः करसंग्रहकारकः।
विद्रोहदमनायाजावुपसेनाधिनायकः॥ २४॥

स्वेति। यः कृष्णः स्वग्रामशासनेशः स्वग्रामस्य टङ्कराया शासनेशः तहसीलदार इति ख्यातः। नात्र वाक्यगताधिकदोष आशङ्कनीयः तहसीलदार इति विशेषं प्रतिपादयितुं शासनपदग्रहणम्। करसंग्रहकारको राजस्वसंग्राहकः। 'भागधेयो बलिः करम्' इति हलायुधः। आजौ युद्धे विद्रोहदमनाय तात्कालिकाङ्गलशासकानां द्विषो विनेतुम् उपसेनाधिनायक उपसेनापतिरभवत्॥ २४॥

ये अपनी नगरी टङ्कारा के शासक (तहसीलदार), कर संग्रह करने वाले और विद्रोहियों के दमन के लिये सेना में उपसेनापति पद पर नियुक्त थे॥ २४॥

पुण्यलक्ष्मीकृपापात्रं सन्निधिःशीलसम्प्रदाम्।
स्वभावे कोमलः क्रूरो यथाकालं यथारविः॥ २५॥

पुण्येति। पुण्यायाः सुभगाया लक्ष्म्याः सम्पत्तेः कृपापात्रमनुग्रहभाजनम्। 'लक्ष्मीः सम्पत्तिशोभयोरि'ति मेदिनि। लक्ष्म्या धर्ममूलकत्वात् पुण्यत्वमुक्तम्। विपुलसम्पत्त्या सनाथित आसीत्। 'सन्निधिः शीलसम्पदाम्' चारित्ररत्नानामुत्तमभाण्डागारः। यथा रविर्यथाकालं कालानुसारम्। 'अव्ययं विभक्ति' (पा. २।१।६) इत्यादिना यथार्थे पदार्थानतिवृत्तौ समासः। ग्रीष्मे तीक्ष्णो हेमन्ते च कोमलस्तथैव स स्वभावे स्वप्रकृत्या। स्वभावस्याधिकरणविवक्षायां सप्तमी। यथाकालं समयानुसारं शासनं

चालयितुं क्रूरः कोपनः कोमलो नम्रश्चाभवन्। यथाकालं क्रूरा कोमलाश्च राजकर्मणिप्रशस्ताः ॥ २५ ॥

ये पवित्र लक्ष्मी के कृपापात्र, शीलसम्पत्ति के भण्डार, स्वभाव से समयानुसार सूर्य की भाँति कोमल तथा उग्र हो जाने वाले थे ॥ २५ ॥

धर्मनिष्ठोऽमलस्वान्तः समयज्ञः सुनीतिमान्।
धैर्यशाली कुलाचारप्रतिष्ठापालको महान् ॥ २६ ॥

धर्मेति। धर्मे मर्यादापालने निष्ठाऽऽस्था यस्य स धर्मनिष्ठः। अमलस्वान्तः पवित्रान्तःकरणः। समयज्ञो यथाकालं विमृश्यकारी। सुनीतिमान् नीतिज्ञः। धैर्यशाली विपत्स्वप्यव्यथितमनाः। महान् कुलाचारप्रतिष्ठापालको दृढतया वंशपरम्परानुयायी अभवत् ॥ २६ ॥

ये धर्म में निष्ठा रखने वाले, पवित्र हृदय वाले, समयानुसार कार्य करने वाले, नीतिनिपुण, धैर्यशाली और अपने कुल के आचार की प्रतिष्ठा के महान् पालक थे ॥ २६ ॥

तस्य पत्नीं दयानन्दस्य च मातरं विवृणोति—

तस्य सत्यवतो ह्यासीत् सावित्रीव पतिव्रता।
दयार्द्रहृदया देवी दिव्यसद्गुणशालिनी ॥ २७ ॥

तस्येति। यथा सत्यवतः सावित्री पत्नी पतिव्रताऽऽसीत् तथैव तस्य कृष्णस्य दयार्द्रहृदया दिव्यसद्गुणाशालिनी अलौकिकगुणवती देवी रुक्मिणीतिनाम्नी पत्नी आसीत्। उपमालङ्कारः ॥ २७ ॥

दिव्य शुभ गुणों वाली, दयामय हृदय वाली उसकी पतिव्रता पत्नी ऐसी ही थी जैसे सत्यवान की पत्नी सावित्री ॥ २७ ॥

पुनस्तामुपमिमीते—

सीतेव रावणाराते रुक्मिणीव मुरद्विषः।
इन्द्राणीव दिवो भर्त्तुः पार्वतीव पिनाकिनः ॥ २८ ॥

सीतेति। रावणाराते रावणशत्रोः श्रीरामस्य सीता इव, मुरद्विषो मुरराक्षसहन्तुः श्रीकृष्णस्य रुक्मिणीव, दिवोभर्त्तुरिन्द्रस्येन्द्राणीव। 'इन्द्र-

वरुणभवशर्व' (पा. ४।१।४९) इत्यादिनाऽऽनुगङ्गीपौ। *पिनाकिनः* शिवस्य। पिनाकस्त्रिशूलः सोऽस्यास्तीति पिनाकी। 'मृत्युञ्जयः कृत्तिवासा पिनाकी प्रमथाधिपः' इत्यमरः। *पार्वतीव* सा कर्सनमहोदस्य पत्नी तमनुगता पतिव्रता आसीत्। उपमाचतुष्टयमत्र ॥ २८ ॥

जैसे रावण के शत्रु राम की पत्नी सीता, श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी, इन्द्र की इन्द्राणी और शिव की पत्नी पार्वती थी, (वैसी ही यह थी) ॥ २८ ॥

पुनरूपमिमीते—

ययातेरिवशर्मिष्ठा वैदर्भीवनलेशितुः।
हिरण्यरेतसः स्वाहा यामिनीव कलानिधेः ॥ २९ ॥

ययातेरिति। *ययातेः शर्मिष्ठा इव नलेशितुः* नलनाम्नो राज्ञः। 'ईश्वरः पतिरीशिता' इत्यमरः। *वैदर्भी* विदर्भभवा दमयन्तीव। *हिरण्यरेतसः* अग्नेः। 'हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः' इत्यमरः। *स्वाहा इव*। स्वाहान्ता अग्नयो भवन्ति। *कलानिधेश्चन्द्रस्य यामिनी* रात्रिरिव सा स्वपत्युरनुवर्तिनी आसीत् ॥ २९ ॥

जैसे ययाति की पत्नी शर्मिष्ठा, नल की दमयन्ती, अग्नि की जैसे स्वाहा और जैसे चन्द्रमा की यहचारिणी चन्द्रिका हो (वैसे ही यह थी) ॥ २९ ॥

छायेव या सहस्रांशोश्चञ्चलेव पयोमुचः।
लावण्यसिन्धुसम्भूता रतिर्वा पुष्पधन्वनः ॥ ३० ॥

छायेति। *सहस्रांशोः सूर्यस्य छाया इव, पयोमुचो* मेघस्य *चञ्चला* तडिदिव। 'चञ्चला तु तडिल्लक्ष्म्योः' इति मेदिनी। *पुष्पधन्वनः* कामदेवस्य *लावण्यसिन्धोः* सौन्दर्य्यसागरात् *सम्भूता* प्रादुर्भूता *रतिर्वा*। इवार्थे वा। यथा छायादयः सूर्यादीनामनुवर्तिनस्तथैव सा स्वपत्युरनुगामिनी बभूव। अत्रोपमागर्भितातिशयोक्तिरलङ्कारः ॥ ३० ॥

सूर्य की सहचरी जैसे छाया, जैसे मेघ की बिजली, कामदेव की जैसे सौन्दर्य सागर से उत्पन्न रति हो (वैसे ही यह थी) ॥ ३० ॥

स्नेहपाथोनिधेर्नूनं रूपलक्ष्मीरनुत्तमा ।
शारदेन्दुमुखी मन्दस्मितनिन्दितचन्द्रिका ॥ ३१ ॥

स्नेहेति । *स्नेहपाथोनिधेः* स्नेहसागरस्य । पाथो जलं तस्य निधिः सागरः । 'कबन्धमुदकं पाथः' इत्यमरः । *अनुत्तमाऽद्वितीया* । न विद्यते उत्तमं यस्या साऽनुत्तमा । 'मयूरव्यंसकादित्वात्' समासः । *रूपलक्ष्मीः* सौन्दर्य्यवती । शरदि भवः शारदो य इन्दुश्चन्द्रस्तस्येव मुखं यस्या सा *शारदेन्दुमुखी* । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' (पा. ४।१।५४) इति ङीष् । लुप्तोपमा । *मन्दस्मितेन* ईषद्धास्येन *निन्दिता न्यक् कृता चन्द्रिका* यया सैवं विधाऽऽसीत् । अतिशयोक्तिः ॥ ३१ ॥

कर्सनजी की यह पत्नी ऐसी थी मानो स्नेह सागर की श्रेष्ठ रूप की लक्ष्मी हो, और इस शरत् कालीन चन्द्रमा के समान मुख वाली वे मानों अपनी मन्द मुस्कान से चन्द्रिका को भी तिरस्कृत कर दिया हो ॥ ३१ ॥

गार्हस्थ्यधर्मनिष्णाता देवातिथ्यर्चनारता ।
दक्षिणा पुण्ययज्ञस्य प्रसन्ना गृहदेवता ॥ ३२ ॥

गार्हस्थ्येति । गृहस्थ एव *गार्हस्थ्यम्* । स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः । तस्य *धर्मे निष्णाता* गृहकर्मदक्षेत्यर्थः । *देवातिथ्यर्चनारता* विद्वत् सेवायायां प्राघुर्णिक-परिचर्यायां च संलग्ना । विद्वांसो हि देवाः इति ब्राह्मणम् । *पुण्ययज्ञस्य दक्षिणा* यज्ञानन्तरं सम्पादिता दक्षिणेव । दक्षिणायज्ञमशेषक्रियं सम्पादयति तामन्तरा तु सोऽपूर्ण एव । अत्र श्रुतिः—'यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽप्सरसः । 'दक्षिणाया दाक्षिण्यं नामर्त्विज्ञो दक्षिणत्वप्रापकत्वम् । ते दक्षन्ते दक्षिणां प्रतिगृह्य' इति । अनेन वर्ण्येन तयैव गार्हस्थ्यं पूर्णमासीदिति व्यक्तम् । गम्यमानोत्प्रेक्षाऽत्रद्रष्टव्या । *प्रसन्ना* पवित्रा *गृहदेवतेव* साऽऽसीत् ॥ ३२ ॥

यह गृहस्थ धर्म में निपुण थी, देव और अतिथियों के पूजासत्कार में लगी रहती थी, यह पवित्र यज्ञ की दक्षिणा के समान थी और सदा प्रसन्न रहने वाली गृहदेवी थी ॥ ३२ ॥

मनसा कर्मणा वाचा भर्त्तृचित्तानुवर्तिनी ।
स्वामिनं सानसूयेवानन्दयामास सर्वदा ॥ ३३ ॥

मनसेति । *मनसा वाचा कर्मणा* सर्वतोभावेन *भर्त्तृचितानुवर्तिनी* पतिहृदयानुकारिणी *सा सर्वदा* सर्वकालम् । *अनसूया इव स्वामिनं* पतिम् *आनन्दयामास* 'तत्करोति तदाचष्टे' इत्यानन्दशब्दाण्ण्यन्तादाम् लिटि । अनसूया स्वपत्युर्हृदयानुकारिन्यासीदितिख्यातिः ॥ ३३ ॥

यह अनुसूया के समान मन वचन और कर्म से अपने पति को इच्छा की अनुगामिनि थी, और अपने पति को सदा आनन्दित रखती थी ॥ ३३ ॥

तस्या गर्भधारणं वर्णयति—

महेश्वरप्रसादात् सा ब्रह्मवंशसमुद्भवा ।
गर्भं बभार कल्याणी जगत्कल्याणहेतवे ॥ ३४ ॥

महेति । *महेश्वरप्रसादाद्* ब्रह्मानुकम्पातः *सा ब्रह्मवंशसमुद्भवा* ब्राह्मणवंशजा *कल्याणी* सौभाग्यवती *जगत्कल्याणहेतवे* संसारस्योपकाराय न त्वात्मनः प्रयोजनाय । 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायोदर्शनमि'ति चतुर्थी । *गर्भं बभार* । अन्तर्वत्नी बभूव ॥ ३४ ॥

उस ब्राह्मण वंश में उत्पन्न, कल्याणी (कर्सन जी की पत्नी) ने ईश्वर की अनुकम्पा से संसार के कल्याण के लिये गर्भ धारण किया ॥ ३४ ॥

योगसिद्धिरिवानन्दं विद्या गुणमिवामलम् ।
वसुन्धरा यथा रत्नं शमी शाखा यथाऽनलम् ॥ ३५ ॥

योगेति । *इव यथा योगसिद्धिः* परेणादृश्यमानन्दं बिभर्ति । योगे सिद्धे यथाऽऽत्मानम् आनन्दो व्याप्नोति । *यथा च विद्याऽदृश्यतया अमलं* निष्कलङ्कं *गुणं* विनयादिकम् बिभर्ति । 'भृञामित्' (७।४।७६) इत्यभ्याससकारस्येत्वम् । *वसुन्धरा* भूमिर्*यथा रत्नमन्तर्धत्ते शमीशाखा च यथाऽन्तर्निलीनम् अनलमग्निं* धत्ते तथैव सा परेषामगोचरं गर्भमन्तः स्वोदरे बभार ॥ ३५ ॥

जैसे योग सिद्धि आनन्द को, विद्या जैसे निर्मल गुण को वसुन्धरा जैसे रत्न को और शमी वृक्ष की शाखा (लकड़ी) जैसे अग्नि को (अन्तर्निहित रूप से) धारण करती है वैसे ही इसने गर्भ धारण किया ॥ ३५ ॥

अर्भको गर्भवास्तव्यो ववृधे स यथा यथा ।
प्रमोदो मनसो मातु र्वृद्धिमाप तथा तथा ॥ ३६ ॥

अर्भकेति । *यथा यथा* कालातिक्रमेण *गर्भवास्तव्यः* उदरवर्ती । वसतीति वास्तव्यः । 'वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च' इति कर्त्तरि तव्यत् । *अर्भको* बालः *ववृधे* वृद्धिमाप । 'उरत्' (पा. ७।४।६६) इत्यभ्यासस्य ऋकारस्यात्त्वम् । *तथा तथा* 'आनुपूर्व्ये द्वे भवत' इति वक्तव्यमिति द्वित्वम् । पूर्वत्र यथायथाम् इत्यत्राप्येनैव द्वित्वं ज्ञेयम् । *मातू* रुक्मिण्या *मनसः प्रमोदः* प्रसन्नता *वृद्धिमाप* ववृधे ॥ ३६ ॥

ज्यों-ज्यों वह गर्भगत बालक बढ़ता गया त्यों-त्यों माता का मन की प्रसन्नता भी बढ़ती गई ॥ ३६ ॥

पूर्वजन्म विशुद्धात्मा प्राप्तवानुदरं मम ।
इत्यानन्दघनं तस्यास्तर्कयामास मानसम् ॥ ३६ ॥

पूर्वेति । *पूर्वेण जन्मना* विशुद्ध आत्मा इति पूर्वजन्मविशुद्धात्मा । पूर्वजन्मकृतसुकृतकर्मा कश्चिन् *ममोदरं प्राप्तवान् इति*–इति शब्द स्वरूपावधारणे । इत्थं *तस्या* मातू रुक्मिण्याः । *आनन्दघनम्* आनन्दसान्द्रम् । 'घनं निरन्तरं सान्द्रम्' इत्यमरः । *मानसं तर्कयामास* ऊहाञ्चक्रे ॥ ३७ ॥

आनन्द से भरपूर उस (माता) का मन कल्पना किया करता था कि पूर्व जन्म की कोई पवित्र आत्मा मेरे पेट में आ गई है ॥ ३७ ॥

युक्ताहारविहाराभ्यां प्रसन्ना पूतमानसा ।
गर्भागतमहात्मानं पालयामास यत्नतः ॥ ३८ ॥

युक्तति । *युक्ताहारविहाराभ्यां* युक्तेन गर्भोचिताहारेण भोजनेन विहारेण दिनचर्यया च । तच्च यथा सुश्रुतसंहितायाम्—गर्भिणी प्रथमाद्दिवसात् प्रभृति नित्यं प्रहृष्टा शुच्यलंकृता शुक्लवसना शान्तिमङ्गलदेवता ब्राह्मण-

गुरुपरा च भवेत्, मलिनविकृतहीनगात्राणि न स्पृशेत्, दुर्गन्धदुर्दर्शनानि परिहरेत् उद्वेजनीयाश्च कथाः, शुष्कं पर्युषितं कुथितं छिन्नं चान्नं नोपभुञ्जीत। एवं विधां शास्त्रविहितचर्यां चरन्ती सा *प्रसन्ना पूतमानसा* पवित्रान्तःकरणा च *गर्भागतमहात्मानं* गर्भापन्नमबालात्मानं बालं *यत्नतः* मा किञ्चित् कर्म गर्भपरिदेवनां जनिष्ट इति प्रयत्नतः *पालयामास* ॥ ३८ ॥

वह प्रसन्नचित्त गर्भोचित आहार-विहार से, पवित्र मन से गर्भगत महान् आत्मा का पालन करती करती थी ॥ ३८ ॥

संस्कृतो यत् स संस्कारैः पुनरुक्तिकलङ्कितैः।
पुनरुक्तप्रदोषोऽपि गुणिषु प्रगुणायताम् ॥ ३९ ॥

संस्कृत इति। स गर्भगतो बालो यज्जातकर्मादिभिः *संस्कारैः संस्कृतः पुनरुक्तिकलङ्कितैरेव* संस्कृतः। तस्य पूर्वत एव संस्कृतत्वात् न संस्कारैः काचिद् विशेषपरिष्कृतिः सम्पादिता बाह्यसंस्कारा पुनरुक्तिदोषदूषिता एवाभवन्नित्यर्थः। परं संस्कराणां शास्त्रविहितत्वादवश्यकर्तव्यता। तस्माद्*गुणिषु* पवित्रात्मसु *पुनरुक्तप्रदोषोऽपि* पौनःपुनिकसंस्कारोऽपि *प्रगुणायतां* गुणवदा चरतु। गुणेषु प्रकर्षताभापादयतु। तस्मिन् विहिता संस्कारा गुणायैवाकल्पन्ताम् इत्यर्थः। 'कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च' (पा.३।१।११) इति क्यङ्॥ ३९ ॥

इस बालक को जो (गर्भाधान आदि) संस्कारों से संस्कृत किया गया वे संस्कार पुनरुक्ति दोष से दूषित थे। किन्तु पुनरुक्ति दोष भी गुणवानों पर अधिक गुणवान हो (जाता है) ॥ ३९ ॥

अन्तर्वत्नीं तां वर्णयति—

शरपाण्डुमुखेन्दुः सा प्रभाता ललनाक्षपा।
अल्पाभरणनक्षत्रा कृशाङ्गी शुशुभे तदा ॥ ४० ॥

शरेति। शर इव पाण्डुर्मुखेन्दुर्यस्या सा *शरपाण्डुमुखेन्दु ललनाक्षपा* वनितारात्रिः *प्रभाता* प्रभातकाल इव *कृशाङ्गी* दौर्बल्यात् तन्वङ्गी भारमसहमानया तया यद् धारितान्यल्पाभरणानि तान्येव नक्षत्राणि यस्या

सा तथोक्ता शुशुभे। यथा प्रातः प्रदोषा तनिमानं भजमाना मन्दचन्द्र-प्रकाशा कतिचित्तारकोभि र्भाति तद्वदेव साऽभादित्यर्थः। परंपरित-रूपकालङ्कारः॥ ४०॥

जैसे रात्रि में प्रातः काल के समय चन्द्रमा शरपुष्प के समान (मन्द किरण होने से) पीला हो जाता है और नक्षत्र भी कम दिखाई पड़ते हैं वैसे ही इस (गर्भ के कारण) दुर्बल अङ्गों वाली देवी का मुख पीला पड़ गया था और इसने आभूषण भी कम धारण कर रखे थे अतः यह प्रभातकालीन अल्पशेष रात्रि के रूप में दिखाई पड़ रही थी॥ ४०॥

पुत्रगर्भवती माता रुक्मिणी कृष्णभामिनी।
धान्यश्रीरिव गौराऽभात् प्रच्छन्नफलवर्धना॥ ४१॥

पुत्रेति। *कृष्णभामिनी* कृष्णपत्नी जनिष्यमाणबालस्य *माता रुक्मिणी पुत्रगर्भवती* पुत्रेण गर्भवती। पुत्रं गर्भे दधानेत्यर्थः। *प्रच्छन्नफलवर्धना* प्रच्छन्नस्य गुप्तस्य फलस्य प्रसूतेर्वर्धनं यस्याः सा *धान्यश्रीः* सस्यकान्तिरिव *गौरवर्णाऽभात्*।

अन्दर ही अन्दर बढ़ते हुये फल वाली धान्य की शोभा जैसे पीली-पीली लगती है वैसे ही पुत्रगर्भ वाली कृष्ण जी (कर्सन जी) की रुक्मिणी देवी (पत्नी) पीली पड़ गई॥ ४१॥

तस्या दोहदविहारमाह—

असुन्धरातटे याऽभूद् रम्योद्यानवसुन्धरा।
प्रायो मनोविनोदार्थं तत्र साऽगात् सखीयुता॥ ४२॥

असुन्धरेति। *असुन्धरानद्यास्तटे या रम्योद्यानवसुन्धरा* रुचिरोपवन-शोभितभूभागोऽभूत् *तत्र सा* रुक्मिणी *मनोविनोदार्थं सखीयुताऽपरसह-चारिणीभिः सह प्रायोऽगात्*। 'इणोगा लुङि' (पा. २।४।४५) इतीणो गादेशः। 'गातिस्थाघुपाभूभ्य सिचः परस्मैपदेषु' (पा. २।४।७७) इति सिचोलुक्। सुन्धरांशस्यावृत्तेरनुप्रासालङ्कारः॥ ४२॥

असुन्धरा नदी के किनारे जो सुन्दर उद्यान भूमि थी वहाँ वह अपनी सखियों सहित मनोरञ्जन के लिये प्रायः जाया करती थी ॥ ४२ ॥

कदाचिच्चन्द्रयामिन्यां देवमङ्गलगीतिभिः ।
ललनाभिस्सुलीलाभिर्मुमुदे रासकेलिभिः ॥ ४३ ॥

कदाचिदिति । सा चन्द्रयामिन्यां चन्द्रिकाद्योतितनिशि *ललनाभिः* वयस्यमहिलाभिः सह *देवमङ्गलगीतिभि* र्देवानां स्तुतिगीतिभिः *सुलीलाभिः* मनोविनोदार्हक्रीडाभी *रासकेलिभिरभिनयगीतैश्च* । 'गर्बा' इति गुर्जरभाषायाम् । *मुमुदे* प्रमोदमातेने ॥ ४३ ॥

कभी-कभी चाँदनी रात में स्त्रियों के साथ देवताओं के मङ्गलगीत वाले रास नृत्य (गर्भनाथ) आदि सुन्दर लीलाओं द्वारा प्रसन्न हुआ करती थी ॥ ४३ ॥

कर्हिचिन्निर्मले नीरे स्नानलीलां विधाय सा ।
मुन्यन्नमुपभुञ्जाना विजहार नदीवने ॥ ४४ ॥

कर्हिचिदिति । *कर्हिचित्* कदाचित् *निर्मले नीरे स्नानलीलां* जलक्रीडां *विधाय सा मुन्यन्नं* मुनिजनोचितभोज्यं फलमूलादिकमुपभुञ्जाना *नदीवने* असुन्धरानदीसमीपवर्तिरम्यतरुवरविलसितभुवि *विजहार* मनोहत्य स्वच्छन्दं मोदमनुबभूव । दोहदपूर्तिरत्यावश्यकीतथा याज्ञवल्क्यसंहितायाम्–'दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरुप्यं मरणं वापि तस्मात् कार्यं प्रियं स्त्रियाः' ॥ ४४ ॥

कभी स्वच्छ जल में स्नानक्रीड़ा करके मुनि जनोचित भोजन (फल मूलादि) आहार करके नदी के परिसरवर्ती वन में वह घूमा करती थी ॥ ४४ ॥

द्विजः सीमन्तसंस्कारं सीमन्तिन्याः शुभे दिने ।
मिष्टान्नमोदितज्ञातिं विदधे विधिवन्मुदा ॥ ४५ ॥

द्विज इति । *द्विजः* श्रीकृष्णः *सीमन्तिन्या* देव्या रुक्मिण्या । 'नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः । *शुभे दिने* कल्याणेऽह्नि चतुर्थे मासि *मुदा* प्रसन्नतया *सीमन्तसंस्कारं* सीमन्तोन्नयनसंस्कारम् । सीम्नः केशपाशपक्षतेरन्तः

प्रान्त उन्नीयतेऽस्मिन्निति सीमन्तोन्नयनम्। शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्। विधिवच्छास्त्रानुसारम्। अत्र च पारस्करगृह्यसूत्रम्—चतुर्थे गर्भमासि सीमन्तोन्नयनम्। आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्"। *मिष्टान्नमोदितज्ञाति* संस्कारोपलक्ष्ये पायससंयावादिना मिष्टान्नेन मोदिता ज्ञातिर्बन्धुवर्गो यस्मिंस्तादृशं संस्कारं *विदधे* चक्रे। बन्धून् भोजयामासेत्यर्थः॥ ४५॥

एक दिन शुभ देखकर ब्राह्मण (कर्सनजी) ने अपनी पत्नी का सीमन्तोन्नयन संस्कार विधिवत् किया जिसमें अपने बन्धुओं और मित्रों को मिष्ठान का भोज दिया॥ ४५॥

विलीनदोहदक्लेशा पीवराङ्गी शशिप्रभा।
वल्लरीव विरेजेऽसौ सम्पन्ननवपल्लवा॥ ४६॥

विलीनेति। *विलीनदोहदक्लेशा*ऽपगतगर्भलालसाजन्यकष्टा। 'दोहदं दौहृदं श्रद्धा लालसा च समाः स्मृताः' इति हलायुधः। *पीवराङ्गी* उपचितगात्रा। अष्टमे मासि गर्भिणी पुनराप्यायत इत्यायुर्वेदविदां विदितमेव। *शशिप्रभा* चन्द्रसन्निभाऽसौ देवी रुक्मिणी *सम्पन्ननवपल्लवा* सञ्जातनवपत्रा *वल्लरी* लतेव *विरेजे* शुशुभे। पूर्णोपमालङ्कारः॥ ४६॥

चन्द्रमा सी कान्ति वाली इस देवी के गर्भकालीन इच्छाओं के पूरा हो जाने और गर्भगत क्लेशों के नष्ट हो जाने से, फिर से अङ्ग पुष्ट होने लगे और यह नये पत्ते और कोयलों से सम्पन्न लता जैसे लगने लगी॥ ४६॥

आसन्नप्रसवां पत्नीं विलोक्य मृगलोचनाम्।
पतिः प्रीततरोजज्ञे कृषिं वा स कृषीवलः॥ ४७॥

आसन्नेति। *आसन्नप्रसवां* प्रसवकालप्राप्तां *मृगलोचनां* मृगीव लोचने यस्याः सा मृगलोचना कुरङ्गाक्षी। 'कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु पुवद्भावोवक्तव्य' (पा. ६३।४२) इति पुंवद्भावः। जातेविवक्षायां मृग इव लोचने यस्या इति विग्रहीतव्यम्। *कृषिं विलोक्य कृषीवलः* कृषक इव। 'रजःकृष्यासूतिपरिषदोवलच्' (पा. ५।२।११२) इति मत्वर्थीयोवलच्। उपमा-

र्थेवाकारः। 'उपमायां विकल्पे वा' इत्यमरः। पतिः कृष्णः पत्नीं रुक्मिणीं विलोक्य प्रीततरो जज्ञे। 'गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि' (पा. ६।४।९८) इत्युपधालोपः। पकारतकारावृत्त्याऽनुप्रासः उपमा चालङ्कारः॥ ४७॥

हरिणी के समान आँखों वाली अपनी पत्नी का प्रसवकाल समीप जानकर कर्सन जी ऐसे प्रसन्न हुये जैसे कृषि को देखकर किसान प्रसन्न होता है॥ ४७॥

आकाशवेदिमालोक्य मेघमण्डलमण्डिताम्।
मयूरो मोदते यद्वत् तद्वत् कृष्णमहोदयः॥ ४८॥

आकाशेति। मेघमण्डलमण्डितां वारिददलपरिवृताम् आकाशवेदिं गगनप्रदेशमालोक्य यद्वद् यथा भाविवृष्टिसम्भावनया मयूरो मोदते तद्वत् कृष्णमहोदयोऽपि पुत्रजन्मसम्भावनया मुमुदे॥ ४८॥

मेघमण्डल से आच्छन्न आकाशमण्डल को देखकर जैसे मोर प्रसन्न होता है वैसे ही (उस समय) कर्सन जी प्रसन्न हुये॥ ४८॥

बालस्य जनिमाह—

शनौवारे दले कृष्णे माघमासे शुभावहे।
सूर्योदयसुवेलायां मङ्गलायां महोषसि॥ ४९॥
दशम्यां मूलनक्षत्रे लग्ने मङ्गलकारके।
मृगाङ्कवसुदिक्पाल–ब्रह्मसम्मितहायने॥ ५०॥
वैक्रमे श्रीमतः कृष्णब्रह्मणो हृदयेश्वरी।
सुषुवे दिव्यतेजस्कं दिवाकरमिवात्मजम्॥ ५१॥

शनौ इति। शनौवारे शनिवासरे कृष्णे दले कृष्णे पक्षे बालस्य जनिकारत्वाच्छुभावहे माघमासे सूर्योदयसुवेलायां सूर्योद्गमे पुण्यमये समये मङ्गलायां महोषसि शुभे कल्ये दशम्यां तिथौ मङ्गलकारके मूलनक्षत्रे लग्ने। मूलनक्षत्रे जातस्य बालस्य मङ्गलकारकत्वान्नक्षत्रस्यापि मङ्गलकारकत्वमुक्तम्। वैक्रमे विक्रमादित्येन प्रवर्त्तिते, मृगाङ्कश्चन्द्र एकः, वसवोऽष्ट

दिक्पाला दिग्गजा अष्टौ *ब्रह्म* एकम्। अङ्कानांवामतो गतिरित्यनुसारं १८८१ तमे वैक्रमे *हायने* विक्रमसंवत्सरे *श्रीमतः कृष्णब्रह्मणः* कृष्णनाम्नो ब्राह्मणस्य हृदयेश्वरी पत्नी *दिवाकरमिव दिव्यतेजस्कमात्मजं* पुत्रं सुषुवे जनयामास ॥ ४९-५१ ॥

संवत् १८८१ में भाद्र शुक्ला दशमी गुरुवार को सूर्योदय के माङ्गलिक उषःकाल के समय मूल नक्षत्र के साथ मङ्गल का योग होने पर श्री कर्सन जी ब्राह्मण की हृदय की सम्राज्ञी पत्नी ने सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया ॥ ४९-५१ ॥

ब्रह्मवंशावतंसेन शिशुहंसेन तेजसा।
निष्कान्तयः कृता नूनं सूतिकागृहदीपिकाः ॥ ५२ ॥

ब्रह्मेति। *ब्रह्मवंशावतंसेन* ब्राह्मणकुलभूषणेन *शिशुहंसेन* बालसूर्येण। रूपकमत्रालङ्कारः,तल्लक्षणं च यथा काव्यालङ्कारसूत्रे-'उपमानोपमेयस्य गुणसाम्यात् तत्त्वारोपो रूपकम्' (१०।६)। 'उभयत्र सेनेत्यावृत्याऽनुप्रासः। द्वयोरेकत्रभावात् संसृष्टिः। 'भानुर्हंसः सहस्रांशुः' इत्यमरः। *तेजसा* स्वौजसा *सूतिकागृहदीपिकाः* प्रसवशालायां प्रकाशार्थं निहिता दीपा नूनं निश्चयेन *निष्कान्तयः* कान्तिहीनाः *कृताः*। उल्लेखालङ्कारः ॥ ५२ ॥

ब्राह्मण वंश के भूषण इस बाल सूर्य ने प्रसूति-गृह के दीपकों को अपने तेज से सचमुच निस्तेज कर दिया ॥ ५२ ॥

दुर्लभं दैवतो लब्ध्वा दीनो द्रव्यनिधिं यथा।
आननन्द तथा पुत्रं नररत्नं द्विजेश्वरः ॥ ५३ ॥

दुर्लभमिति। दैवतो भाग्यतो *दुर्लभं द्रव्यनिधिं* धनराशिं *लब्ध्वा यथा* दीनो दरिद्र आनन्दति *तथैव नररत्नं* नरेषु रत्नम्। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं रत्नं तदभिधीयते'। सर्वलोकोत्कृष्टं पुत्रं लब्ध्वा *द्विजेश्वरो* ब्राह्मणवरः कृष्ण *आननन्द* प्रसन्नो बभूव ॥ ५३ ॥

जैसे निर्धन व्यक्ति भाग्यवश दुर्लभ रत्न को प्राप्त करके प्रसन्न होता है वैसे ही ब्राह्मण-स्वामी कर्सन जी नररत्न पुत्र को पा कर प्रसन्न हुये ॥ ५३ ॥

भाग्यवन्तमिहात्मानं मेनेऽयं गुणिनां द्विजः ।
गुरुत्वेन गुरुर्लोके लोकवन्द्यजगद्गुरोः ॥ ५४ ॥

भाग्यवन्तमिति । *अयं गुणिनां द्विजो* गुणिषु श्रेष्ठः । वर्णेषु द्विजस्य श्रेष्ठत्वादस्य श्रेष्ठे व्यञ्जना । लोकैर्वन्द्यश्चासौ जगतो गुरुर्लोकवन्द्यजगद्गुरुर्दयानन्दस्तस्य *गुरुः* पिता कृष्णो *गुरुत्वेन* जगद्गुरोर्दयानन्दस्य पितृत्वेनात्मानमिह *लोके भाग्यवन्तं मेने* । यमकालङ्कारः ॥ ५४ ॥

लोकवन्द्य जगद्गुरु (महर्षि दयानन्द) के पिता के महत्त्वपूर्ण पद के कारण गुणिजनों में श्रेष्ठ यह ब्राह्मण अपने को संसार में भाग्यशाली मानने लगा ॥ ५४ ॥

आशास्सुमनसां सर्वाः फलिष्यन्तीति साम्प्रतम् ।
आशाध्वान्तविमुक्तास्ताः प्रसेदुरुदये गुरोः ॥ ५५ ॥

आशेति । *गुरोर्बालदयानन्दस्य गुरोर्नक्षत्रस्य च उदये* उत्पन्ने उद्गते च सति । घनात्यये गुरुरुदेतीति खविदां विदितमेव । *साम्प्रतं सुमनसां* देवानां विदुषां च । 'सुमनाः पुष्पमालयोः स्त्रियां ना धीरदेवयोः' इति मेदिनी । *सर्वा आशा* ऐन्द्र्यादयोऽष्टौ दिशः सम्भावितलालसाश्च फलिष्यन्ति विकसिष्यन्ति पूर्तिं चैष्यन्ति इति विभाव्य ता आशा अष्टौ दिशो हृदयगताभिलाषाश्च *ध्वान्तविमुक्ता* धूल्यादिरहिता विमला दयानन्दपक्षे संशयहीना ध्रुवसम्भवा *प्रसेदुः* जहर्षुः । श्लेषालङ्कारः ॥ ५५ ॥

अब देवताओं की सब आशायें पूरी होंगी, यह जानकर गुरू (गुरु नक्षत्र तथा जगद्गुरु दयानन्द) के उदय होने से सब दिशाएँ अन्धकार रहित होकर हँसने लगी ॥ ५५ ॥

कृशोदर्या जनन्यास्तु ब्रह्मानन्दसहोदरः ।
पुत्ररत्नभवानन्दः कथं वर्ण्योऽल्पवर्णकैः ॥ ५६ ॥

कृशेति । विमुक्तगर्भत्वात् *कृशोदर्याः* सङ्कुचितकुक्षेर्जनन्या मातुर्ब्रह्मानन्दसहोदरः ब्रह्मलाभजन्यानन्दसमः *पुत्ररत्नभवानन्दः* पुत्रोत्पत्तिजन्यसुखम् *अल्पवर्णकैर्मिताक्षरैर्वाग्विधुरतया कथं वर्ण्यः* वर्णयितुं शक्येत ॥ ५६ ॥

कृशोदरी माता का ब्रह्मानन्द के समान, पुत्र की उत्पत्ति से पैदा होने वाले आनन्द का तो वर्णन इन इने-गिने अक्षरों द्वारा कैसे किया जा सकता है ॥ ५६ ॥

मङ्गलैर्गुरवो वाद्यै रमणीनां मनोरमैः ।
गीतैः सम्भावयामासुः सुतजन्ममहोत्सवम् ॥ ५७ ॥

मङ्गलैरिति । *गुरवः* पित्र्यादयो *मङ्गलैः* कल्याणसूचकै *वाद्यैः रमणीनां* परिपार्श्विकमहिलानां च *मनोरमैर्गीतैः सुतजन्ममहोत्सवं सम्भावयामासुः* सम्पादयामासुः ॥ ५७ ॥

(घर के) बड़े लोग मङ्गलवाद्यों और स्त्रियों के मनोरम गीतों से पुत्र जन्म का महोत्सव मनाने लगे ॥ ५७ ॥

सलिलं निर्मलं जज्ञे ववौ वायुः सुखावहः ।
अनलो हव्यकव्यैश्च प्रदीप्तो दक्षिणोऽजनि ॥ ५८ ॥

सलिलमिति । तस्योत्पन्ने सति *सलिलम*प्यानन्दातिशयान् *निर्मलं* प्रसन्नं *जज्ञे*ऽभवत् । *सुखावहः* सुखप्रदो *वायुर्ववौ* । *हव्यै* र्देवार्हान्नैः *कव्यैः* पित्रर्हान्नैश्च । 'हव्यकव्ये दैवपित्र्ये अन्ने' इत्यमरः । *प्रदीप्तः* प्रज्वलितोऽनलो *दक्षिणो* दक्षिणावर्तोऽजनि । अग्नेर्दक्षिणावर्त्तत्वं शुभशकुनं मन्यन्ते ॥ ५८ ॥

(उस समय) पानी स्वच्छ हो गया, वायु सुखदायक होकर चलने लगी और आग हव्य कव्य द्रव्यों द्वारा अनुकूल ज्वाला वाली हो गई ॥ ५८ ॥

वसुमेनं वहन्तीयं वसुधाशस्यशालिनी ।
विरराज मनोज्ञाभं प्रसन्नं गगनं तदा ॥ ५९ ॥

वसुमिति । *इयं वसुधा* वसुन्धरा । *एवं* 'द्वितीयाटौस्वेनः (पा. २।४।३४) इत्यन्वादेश 'इदम एतदो वा' एनादेशः । *वसुं* देवमिव बालम् । 'वसुर्नादेवभेदाग्निभायोक्त्रबकराजसु' इति मेदिनी । *वहन्ती* धारयन्ती *शस्यशोभिणी*प्रफुल्लसस्या समजनि । *गगनं* च *तदा* तस्योत्पत्तौ *प्रसन्नं* स्वच्छं*मनोज्ञाभं* रुचिरवर्णं *विरराज* ॥ ५९ ॥

इस (बालक) देव को धारण करके धरती भी शस्य के समान हरी-भरी शोभावाली हो गई और आकाश स्वच्छ होकर सुन्दर शोभा वाला हो गया ॥५९॥

तारामौक्तिकमालां सा दधाना चन्द्रिकाम्बरम् ।
निर्मलेन्दुमुखी चक्रे रजनी स्वागतं मुदा ॥ ६० ॥

तारेति । सा तदुत्पत्त्यनन्तरागामिनी *निर्मलेन्दुमुखी* निर्मलइन्दुरेव मुखं यस्या तादृशी *रजनी* रात्रिः । *तारामौक्तिकमालाम्* तारा एव मौक्तिकानि तेषां मालां *चण्डिकाम्बरं* ज्योत्स्ना परिधानं च । 'अम्बरं न द्वयोर्व्योम्नि सुगन्ध्यन्तरवस्त्रयोः' इति मेदिनी । *दधाना* धारयन्ती *मुदा* प्रसन्नतया नवजातबालस्य *स्वागतमभिनन्दनं चक्रे* ॥ ६० ॥

शरत्कालीन चन्द्रमुखी रात्रि ने चन्द्रिका रूपी वस्त्र धारण करके और ताराओं रूपी मोती की माला पहन करके प्रसन्नतापूर्वक (बाल दयानन्द का) स्वागत किया ॥ ६० ॥

सर्वर्तवो यथा लिङ्गं स्वस्वोपायनपाणयः ।
हृदयङ्गमया लक्ष्म्या बालेन्द्रं समपूजयन् ॥ ६१ ॥

सर्वर्त्तव इति । *सर्वर्त्तवः* सर्वे ऋतवो *यथालिङ्गं* लिङ्गमनतिक्रम्य-स्वप्राकृतलक्षणोपेताः *स्वस्वोपायनपाणयः* स्वसम्पद्विशेषमेवोपायनरूपेण पाणौ गृहीत्वा *हृदयङ्गमया* हृदयहारिण्या *लक्ष्म्या* शोभया सम्पत्त्या वा *बालेन्द्रं* बालकं दयानन्दं *समपूजयन्* अभ्यनन्दयन् । न कदाचिद् ऋतूद्ध्वंसो जात इति ध्वन्यते ॥ ६१ ॥

सब ऋतुएँ अपनी-अपनी भेंट हाथों में लेकर अपने लक्षणानुसार हृदयङ्गम सम्पदा से बालराज (दयानन्द) की अर्चना करने लगीं ॥ ६१ ॥

तस्य शैशवं वर्णयति—

प्रचीयमानरम्याङ्गो मातृस्तन्यप्रभावतः ।
सूर्यांशुसम्प्रवेशेन स रेजे चन्द्रमा इव ॥ ६२ ॥

प्रचीयमानेति । *मातृस्तन्यप्रभावतो* मातु र्दुग्धपानजन्यप्रभावात् । स्तने भवं स्तन्यं । भवार्थे यत् । प्रचीयमानानि वर्ध्यमानानि रम्याणि कोमलानि कम्राणि चाङ्गानि शरीरावयवा यस्य स *प्रचीयमानरम्याङ्गो* बालः *सूर्यांशुसम्प्रवेशेन* सूर्यकिरणप्रवेशेन *चन्द्रमा इव रेजे* । यथा सूर्य-

किरणप्रवेशक्रमेण चन्द्र आप्यायते तथैव मातृदुग्धपानतस्तस्य शरीरमहरहः ववृधे ॥ ६२ ॥

जैसे चन्द्रमा, सूर्य की किरणों के प्रवेश से प्रतिदिन बढ़ता जाता है, वैसे ही माता के दूध के प्रभाव से इस बालक के सुन्दर अङ्ग बढ़ने लगे ॥ ६२ ॥

लालितः स्निग्धहृदयैः स्त्रीजनैः पद्मलोचनः ।
वितेने रुचिरां लीलां प्रकृत्या मधुरो वटुः ॥ ६३ ॥

लालित इति । *स्निग्धहृदयैः* प्रेमाप्लुतमातृसमहृदयैः *स्त्रीजनैः* पारिपार्श्विकमहिलाभिर्लालितः । लल उपसेवायामिति भौवादिकात् लल ईप्सायाम् इति चौरादिकाद् वा । क्तोऽत्र पद्मलोचनः कमलनयनः *प्रकृत्या मधुरो* निसर्गरुचिरः। 'तृतीयाविधाने प्रकृत्यादीनामुपसंख्यानम्' (पा. वा. २।३।१८) इति तृतीया विभक्तिः । *वटुर्ब्रह्मचारी* बालो *रुचिरां* लीलां विलासं *वितेने* चकार ॥ ६३ ॥

स्वभाव से मधुर, कमल जैसी आँखों वाला यह बालक स्नेहसिक्त हृदय वाली स्त्रियों से लालित पालित होता हुआ सुन्दर बाल क्रीड़ा किया करता था ॥ ६३ ॥

निसर्गमञ्जुलां वाणीं बालको रुचिराङ्गकः ।
पितरौ प्रीणयामास बापु बावेति सम्ब्रुवन् ॥ ६४ ॥

निसर्गेति । रुचिराणि ह्रस्वान्यङ्गानि यस्य स *रुचिराङ्गकः* । ह्रस्वे कन् प्रत्ययः । *बालको* बापु बावेति गुर्जरभाषायां पित्रभिधानम् । एवंविधां बालसुवचां निसर्गमञ्जुलां प्रकृत्या कोमलां *वाणीं सम्ब्रुवन् पितरौ* मातापितरौ । 'पिता मात्रा' (पा. १।२।७०) इत्येकशेषः । *प्रीणयामास* आह्लादयाञ्चकार । स्वभावोक्तिरलङ्कारोऽत्र सर्वत्र बाललीलायां द्रष्टव्यः ॥ ६४ ॥

सुन्दर और नन्हें-नन्हें अङ्गों वाला यह बालक बापू, बाबा इत्यादि स्वभाव सुन्दर वाणी बोलता हुआ माता-पिता को आनन्दित किया करता था ॥ ६४ ॥

गङ्गापात्रजले तिष्ठन्नम्बुबिन्दून् कराम्बुजैः ।
उच्छालयन् हसन्नुच्चै र्हासयामास बान्धवान् ॥ ६५ ॥

गङ्गेति। *गङ्गापात्रजले स्नानपात्रनिहिते जले स्नानाय तिष्ठन्नयं बालः कराम्बुजैः* करपल्लवेनाम्बुबिन्दून् *उच्चैरुच्छालयन्नूर्ध्वं क्षिपन् स्वयं हसन् बान्धवान्* स्नेहिनः पारिवारिकान् *हासयामास* ॥ ६५ ॥

स्नानपात्र के पानी में खड़े होकर हस्त-कमलों से पानी की बूँदों के छींटे ऊपर उछालता हुआ यह स्वयं हँसता था और अपने सम्बन्धियों को भी हँसा देता था ॥ ६५ ॥

धूलिधूसरसर्वाङ्गो वसुधायां लुठन्मुदा।
भस्मशुक्लतनोः शोभां शङ्करस्य बभार सः ॥ ६६ ॥

धूलीति। *स बालो मुदा* प्रसन्नतया *वसुधायां* भुवि *लुठन्* लेटयन् *धूलिधूसरसर्वाङ्गो* धूलिलिप्तगात्रः *भस्मशुक्लतनो* भस्मना शुक्लं तनुः शरीरं यस्य तस्य *शङ्करस्य* शिवस्य *शोभामनुकृतिं बभार*। उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ६६ ॥

प्रसन्नता से भूमि पर लोट-पोट होता हुआ यह अपने सारे शरीर पर धूल लगा लेता था और भस्म लगाने से श्वेत शरीर वाले शिवजी की शोभा धारण कर लेता था ॥ ६६ ॥

दधिमन्थनकालेऽसौ नवनीताभिलाषुकः।
तक्रबिन्दूक्षितास्येन्दु र्जनयामास कौतुकम् ॥ ६७ ॥

दधीति। *असौ बालो दधिमन्थनकाले* दधिविलोडनसमये प्रातःकाले *नवनीताभिलाषुको* मन्थनोत्थघृतं कामयमानः। 'लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमश्रुभ्य उकञ्' (पा. ३।२।१५४) इति ताच्छील्य उकञ्। मन्थदण्डचालनोद्भवै स्तक्रबिन्दुभिरुक्षितं सिक्तमास्येन्दुर्यस्य तादृशः सनत्स दर्शकानां *कौतुकं मनोरञ्जनं जनयामास*। पश्यत पश्यत बालममुमिति जना जहसुर्मुमुदिरे च ॥ ६७ ॥

दही के विलोडन के समय मक्खन लेने की इच्छा से यह छाछ की बूँदों से अपने मुँह को लिप्त कर लेता था जिससे (देखने वालों को) कौतुहल होता था ॥

नानाभरणरत्नानि गणयन्निगडानिव।
शरीरात् सारयामास शिशुर्योगीवनिःस्पृहः ॥ ६८ ॥

नानेति । *शिशुः नानाभरणरत्नानि* पितृभ्यां परिधापितानि नानाभूषणानि रत्नानि च *निगडान्* शृङ्खला इव गणयन् जानानो *योगीव निःस्पृहो*ऽपगतकामः *शरीराद्* अवयवेभ्यः *सारयामास* अवतारयामास ॥ ६८ ॥

अनेक आभूषण रत्नों को बेड़ी सी समझता हुआ यह बालक निःस्पृह योगी की भाँति अपने शरीर से उतार फेंकता था ॥ ६८ ॥

देवलक्षणसम्पन्नो भव्यभालार्द्धचन्द्रमाः ।
विशालाक्षः सुनासाग्रः सुश्रवा मृदुकुन्तलः ॥ ६९ ॥
सुग्रीवो दीर्घहस्ताब्जः कपाटोरा वराङ्घ्रिमान् ।
रम्यरूपैर्गुणैश्चायं जहार सुहृदां मनः ॥ ७० ॥

देवेति । *देवलक्षणसम्पन्नो* महापुरुषलक्षणोपेतः । अग्रे वर्णयिष्यमाणानि सर्वाण्येव महतां लक्षणानि । *भव्य* आकर्षको *भालो* मस्तकम् एवार्द्धचन्द्रमिव यस्य स *भव्यभालार्द्धचन्द्रमाः* । *विशालाक्ष* आयतलोचनः । 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' (पा. ५।४।११३) इति समासान्तः षच् प्रत्ययः । शोभनो नासायाः अग्रभागो यस्य स *सुनासाग्रः* शुकनासिकः । 'क्लीबे घ्राणं गन्धवहा घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः । *सुश्रवाः* सुकर्णः । *मृदुकुन्तलः* कोमलमूर्द्धजः । *सुग्रीवः* कम्बुग्रीवः *दीर्घहस्ताम्बुज* आजानुबाहुः *कपाटोरा* पृथुवक्षाः *वराङ्घ्रिमान्* करभचरणः । 'अङ्घ्रिर्नापादमूलयोः' इति मेदिनी । एवं विधः कान्तकायः कमनीयगात्रः *सोऽयं* बालो *रम्यरूपै गुणैश्च सुहृदां* स्नेहिसम्बन्धिजनानां स्वपितृमित्राणाम् । 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः (पा. ५।४।१५०) । *मनो जहाराचकर्ष* ॥ ६९–७० ॥

इस बालक में देवताओं के लक्षण मौजूद थे । आधे चन्द्रमा की भाँति इसका ललाट बड़ा भव्य था, आँखें विशाल थीं, नाक सुन्दर और लम्बी थी, कान सुन्दर थे, बाल कोमल थे, गर्दन सुन्दर थी, हस्तकमल लम्बे थे, छाती किवाड़ की तरह (चौड़ी) थी, पैर सुन्दर थे । अपने सुन्दर रूप और गुणों से वह मित्रों (सम्बन्धियों) के मन को हर लेता था ॥ ६९–७० ॥

तस्य नामसंस्कारमाह—

शुक्ले पक्षे शुभे काले धर्मशास्त्रविदांवरः ।
तस्याभिधानसंस्कारं विदधे प्रीतिमान् पिता ॥ ७१ ॥

शुक्ल इति । *शुक्ले पक्षे शुभे काले* शुभमुहूर्ते *धर्मशास्त्रविदांवरः* धर्मशास्त्रज्ञः । 'यतश्च निर्धारणम्' (पा. २।३।४१) इति षष्ठी । *प्रीतिमान्* पुत्रं प्रति वात्सल्यभावभरितः *पिता तस्याभिधानसंस्कारं* विदधे चकार । तथा च पारस्करगृह्यसूत्रे 'दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति' ॥ ७१ ॥

धर्मशास्त्र के श्रेष्ठ विद्वान् स्नेहमय पिता ने शुक्ल पक्ष और शुभ समय में उस (अपने पुत्र) का नाम संस्कार किया ॥ ७१ ॥

शङ्करं जगतो नाथं सौख्यमूलं भजेदयम् ।
सुतो ममेत्यमुं चक्रे मूलशङ्करनामकम् ॥ ७२ ॥

शङ्करमिति । शङ्करोतीति शङ्करः । मूलत एव शङ्करः मूलशङ्करः प्रकृत्यैव कल्याणकरः अथवा शङ्करः शिवः । जगतः सौख्यस्य मूलमादिकारणं चासौ शङ्कर इति मूलशङ्करः । इमां व्युत्पत्तिमर्थतोऽनुक्रामति कविः शङ्करमिति । *जगतो नाथं* स्वामिनं *सौख्यमूलमानन्दस्यादिकारणम्* । सुखात् स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः । *शङ्करं* शिवमयं *मम सुतो भजेत* सेवेत इत्यत इति हेतुं विभाव्य पिता *अमुं* बालं *मूलशङ्कर* इति नामानं *चक्रे* ॥ ७२ ॥

यह मेरा पुत्र संसार के स्वामी, सुख के मूल शङ्कर (शिव) की भक्ति करे, इस विचार से इसका नाम मूलशङ्कर रखा ॥ ७२ ॥

वयस्या बान्धवा स्निग्धा मातरो मङ्गलश्रियः ।
बुधेन्द्रा बालकेन्द्रं तं वर्धयामासुराशिषा ॥ ७३ ॥

वयस्या इति । *वयस्याः* कृष्णमहोदयस्य मित्राणि । *बान्धवा* बन्धुरेव बान्धवः । प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययः । *स्निग्धाः* स्नेहिनः मङ्गलश्रियः सौभाग्यवत्यो वनिता *बुधेन्द्रा* विद्वद्वराश्च *तं बालकं मूलशङ्करमाशिषा* मङ्गलकामनया *वर्धयामासुः* तस्मै शुभं प्रार्थयामासुः ॥ ७३ ॥

मित्र, बान्धव, स्नेहमयी माताओं और सौभाग्यवती स्त्रियों तथा विद्वानों ने इस बालक को आशीर्वाद से बधाई दी ॥ ७३ ॥

निर्निमेषेण नेत्रेण पुत्रास्यं पिबतः पितुः ।
हर्षोऽमृतं ममौनान्तः सिन्धोः पूर इवैन्दवम् ॥ ७४ ॥

निर्निमेषेणेति । निर्निमेषेण अनिपातितनिमेषेण नेत्रेण अतिवात्सल्यतया *पुत्रास्यं पिबत* एकतानदृशौत्सुक्येन सुतमुखं पश्यतः पितुः *अन्तर्हृदि* मानसे हर्षो तथा न *ममौ* यथा *ऐन्दवममृतं* चन्द्रज्योत्स्नाम् । इन्दोरिदमैन्दवम् । पिबतो बिभ्रतः *सिन्धो पुरः* जलप्रवाहः समुद्रान्तर्न माति ॥ ७४ ॥

एकटक नजर से पुत्र के मुख को देखते हुये पिता के हृदय में आनन्द ऐसे ही नहीं समाता था जैसे चान्दनी देखकर समुद्र का पानी नहीं समाता ॥ ७४ ॥

शिशोः शकटिकां धृत्वा कराभ्यामङ्गने चलन् ।
क्रीडन् मुदा हसन् मन्दं मोदयामास मातरम् ॥ ७५ ॥

शिशोरिति । *शिशोः शकटिकां* शिशूनां गमनशिक्षणार्थं त्रिचक्राकारां गन्त्रीम् । ह्रस्वः शकटः शकटिका । 'ह्रस्वे' (पा. ४।३८६) इति कन् । 'क्लीबेऽनः शकटोऽस्त्री स्याद्गन्त्री' इत्यमरः । *कराभ्यां धृत्वाऽवलम्ब्य अङ्गनेऽलिन्दे चलन्* बालमूलशङ्करः *मुदा क्रीडन् मन्दं हसन्* बालस्वभावतः स्मयमानो *मातरं मोदयामास* । माता दर्शं दर्शं शिशुममोमुद्यततमाम् ।७५।

बालक छोटी गाड़ी को दोनों हाथों से पकड़कर आङ्गन में चलता हुआ क्रीड़ा कल्लोल करता हुआ तथा हँसता हुआ माता को आनन्दित कर देता था ॥ ७५ ॥

वदनेन्दोः पिबन्ती सा चुम्बनैरमृतं शिशोः ।
मोक्षानन्दं तृणं मेने लब्ध्वापुत्रसुखं प्रसूः ॥ ७६ ॥

वदनेति । *सा प्रसूः* माता । प्रसूत इति प्रसूः कर्त्तरि क्विप् । *शिशोः* मूलशङ्करस्य *वदनेन्दोः* मुखचन्द्रस्य *चुम्बनैरमृतं पिबन्ती* हृदि वात्सल्यसुखममृताभिषेकमिवानुभवन्ती *पुत्रसुखं लब्ध्वा मोक्षानन्दमपि तृणं मेने*

तुच्छमगणयत्। 'मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु' (पा. २।३।१७) इति द्वितीया ॥ ७६ ॥

वह माता बच्चे के मुखचन्द्र के चुम्बन से अमृत पान करती हुई पुत्र सुख को पाकर मोक्ष के आनन्द को भी नगण्य समझती थी ॥ ७६ ॥

बालगन्त्रीं तमारोप्य बालकं मूलशङ्करम्।
आरामे किङ्करो रम्ये निन्ये वाऽसुन्धरातटे ॥ ७७ ॥

बालेति। तं बालकं मूलशङ्करं बालगन्त्रीं शिशुभ्रमणार्थरचितां शकटिकामारोप्याधिरोहय्योपवेशय्य च किङ्करो रम्ये आरामे उद्याने असुन्धरातटे वा निन्येऽनयत्। नयतेर्लिटि एशि 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' (पा. ६।४।८२) इति यण्णादेशः ॥ ७७ ॥

इस बालक मूलशङ्कर को बैलगाड़ी पर बैठाकर नौकर सुन्दर बाग या असुन्धरा नदी के किनारे पर ले जाता था ॥ ७७ ॥

उद्याने खगवृन्दानां गुञ्जनैर्मञ्जुलैः कलैः।
नानाकुसुममालानां रूपैश्च मुमुदेऽर्भकः ॥ ७८ ॥

उद्यान इति। किङ्करेण क्रीडार्थमुद्याने नीतोऽर्भको बालमूलशङ्करस्तत्र खगवृन्दानां पक्षिकुलानां मञ्जुलैर्मधुरैर्गुञ्जनैः कलैश्च। द्वयोरपि ध्वनिकृतभेदात् पृथगुपादानम्। नानाकुसुममालानां विविधसुमनोवृन्दानां च रूपैर्मनोहरवर्णैर्मुमुदे प्रससाद ॥ ७८ ॥

बालक बाग में अनेक पक्षियों की गुञ्जार और मधुर कलरवों से तथा अनेक प्रकार के फूलों के समूह के रूपों से बड़ा प्रसन्न होता था ॥ ७८ ॥

तरङ्गिण्यास्तरङ्गाम्भो-बिन्दूत्क्षेपैर्मनोरमैः।
लुठनैर्वालुकाप्रान्ते डिम्भो रेमेऽन्यबालकैः ॥ ७९ ॥

तरङ्गिण्या इति। तरङ्गिण्या नद्या मनोरमैर्हृदयहरैस्तरङ्गाम्भोबिन्दूत्क्षेपैर्लहरिकाजलकणविकीर्णैर्वालुकाप्रान्ते नदीपुलिन्दे लुठनैः भुवि सर्वाङ्गश्लेषैः। तौदादिकाल्लुठतेः 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्' (पा. १।२।१)

इति ङित्वाद् गुणाभावः। *अन्यबालकैः स्ववयस्यैः सह डिम्भो बालो अयं रेमे चिक्रीड* ॥ ७९ ॥

यह बालक अन्य बालकों के साथ नदी की मनोहर तरङ्गों के पानी की बूँदों को उछाल कर और रेती के स्थानों पर लोटकर खेला करता था ॥ ७९ ॥

लीलाभिर्मधुरमनोहराभिरेवं
सर्वेषां हृदयहरो वरो वटूनाम्।
ब्रह्मानुग्रहरुचिराङ्गयष्टिकोऽसौ
पञ्चाब्दप्रमितवयः सुखेन भेजे ॥ ८० ॥

इति वृन्दावनगुरुकुलविश्वविद्यालयाधिगतविद्यारत्नस्य वटोदरार्य-कन्यामहाविद्यालयाचार्यस्य श्रीपण्डितमेधाव्रतकविरत्नस्य कृतौ दयानन्ददिग्विजये ब्रह्माङ्के महाकाव्ये महर्षिबाल-लीलावर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥

लीलाभिरिति। *एवमुपर्युक्तदिशा मधुरमनोहराभी* रोचिकाभिरत एव मनोहराभिः *लीलाभिर्बालक्रीडाभिः सर्वेषां* पारिवारिकानां दर्शकानां च *हृदयहरो* वात्सल्यभावं जनयन् *वटूनां वरो* ब्रह्मचारी *ब्रह्मानुग्रहेणेशानु-कम्पया* रुचिराऽङ्गयष्टिर्गात्रवल्ली यस्य स *ब्रह्मानुग्रहरुचिराङ्गयष्टिकः*। समासान्तकप्प्रत्ययः। *असौ* मूलशङ्करः पञ्चाब्दप्रमितवयः वयसः पञ्च-वर्षाणि सुखेन सुखमेधमानो भेजे सिषेवे। अत्र छन्दः प्रहर्षिणी, तल्लक्षणं च पैङ्गलछन्दः शास्त्रे—'प्रहर्षिणी मनौ जरौ ग त्रिकदशकौ' ॥ ८० ॥

इस प्रकार मधुर और मनोहर लीलाओं द्वारा यह उत्तम बालक सबके हृदय को हर लेता था। ईश्वर की कृपा से सुन्दर अङ्गयष्टि वाले इस बालक के पाँच वर्ष सुख से बीत गये ॥ ८० ॥

इत्यधीतसाङ्गोपाङ्गवेदचतुष्टयेन आचार्यमहावीरेण विरचितया विजयमङ्गलाख्यया व्याख्यया समेतो दयानन्ददिग्विजये महाकाव्ये महर्षिबाललीलावर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥

परीक्षोपयोगी ग्रन्थ—

१ रघुवंशम् । महाकविकालिदासविरचितम्, 'सञ्जीविनी' तथा 'सुधा' व्याख्या सहित, पं० ब्रह्मशङ्कर मिश्र संपादित, प्रथम सर्ग २–००
द्वितीय सर्ग २–००, १–५ सर्ग १०–००, १–२ सर्ग ४–००
२–३ सर्ग ४–००, १–४ सर्ग ८–००, प्रत्येक सर्ग २–००

२ किरातार्जुनीयम् । महाकविभारविविरचितम्, घण्टापथ-सुधा-व्याख्या सहितम्, व्या० पं० गङ्गाधर मिश्र १–२ सर्ग ४–००, १–३ सर्ग ६–००
प्रथम सर्ग २–००, द्वितीय सर्ग २–००, तृतीय सर्ग २–००

३ वृत्तरत्नाकरः । नारायणी-मणिमयी-हिन्दीटीकाद्वयोपेतः, व्याख्या०—पं० केदारनाथ शर्मा ६–००

४ नागानन्दनाटकम् । श्री हर्षदेवविरचितम्, भावार्थदीपिका-संस्कृत हिन्दीटीका सहित, व्याख्या०—आचार्य बलदेव उपाध्याय ६–००

५ मेघदूतम् । कालिदासविरचितम्, सञ्जीवनी-चरित्रवर्द्धिनी-भावबोधिनी-सौदामिनी-व्याख्याचतुष्टयोपेतम् । सम्पादक—पं० श्री ब्रह्मशंकर मिश्र ३–००

६ अमरकोशः । श्री अमर सिंह विरचित, मूलमात्र प्रथम काण्ड ०–४०
द्वितीय काण्ड ०–५०, तृतीय काण्ड ०–५०

७ व्यक्तिविवेकः । हिन्दी व्याख्या०—डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी ३०–००

८ याज्ञवल्क्यस्मृतिः । 'प्रकाश'-हिन्दी टीका सहित, व्याख्या०—डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय (आचाराध्याय ८–००) ४५–००

९ अलङ्कारसर्वस्वम् । हिन्दी व्याख्या०—डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी ४५–००

१० जानकीहरणम् । 'सुबोधिनी'-हिन्दी व्याख्या सहित, डॉ० यदुनन्दन मिश्र संपादित १–२ सर्ग ८–००

११ नलचम्पू अथवा दमयन्ती कथा । त्रिविक्रमभट्ट विरचित, हिन्दी व्याख्या०—श्री कैलासपति त्रिपाठी, प्रथम उच्छ्वास ५–००
१–२ उच्छ्वास ८–००, सम्पूर्ण ३०–००

अन्य प्राप्तिस्थान—चौखम्भा विश्वभारती चौक, वाराणसी